भारत कानून पुस्तकालय वेब संस्करण

इस उत्पाद का लाइसेंस है: राव धनबीर सिंह

डोसिड # IndLawLib/2420743

2024 आईएनएससी 979

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

डिवीजन बेंच

ओम प्रकाश यादव - अपीलकर्ता

बनाम।

निरंजन कुमार उपाध्याय और अन्य - प्रतिवादी

(पूर्व : जे.बी. पारदीवाला और मनोज मिश्रा, जे.जे.)

आपराधिक अपील संख्या 5267-5268/2024 (एसएलपी (सीआरएल) संख्या 8239-8240/2018 से उत्पन्न)

निर्णय दिनांक : 13-12-2024

लोक सेवकों के ऐसे कार्य जो सत्ता का दुरुपयोग या आपराधिक आचरण दर्शाते हों, वे सीआरपीसी की धारा 197 के अंतर्गत संरक्षण के योग्य नहीं हैं।

क. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - धारा 197 का दायरा - एक सार्वभौमिक नियम नहीं - न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यह निर्धारित करने के लिए एक समान नियम नहीं हो सकता है कि कोई कार्य धारा 197 सीआरपीसी के अंतर्गत आता है या नहीं - प्रत्येक मामले का निर्णय उसके विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए।

बी. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - संकीर्ण और व्यापक निर्माण के बीच संतुलन - न्यायालय ने संकीर्ण निर्माण (धारा को आधिकारिक कर्तव्यों के भीतर कार्यों तक सीमित करना) और व्यापक निर्माण (पद के रंग के तहत कार्यों पर विचार करना) के बीच संतुलन बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

सी. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - धारा 197 को लागू करने के मानदंड - प्रत्यक्ष और उचित संबंध - न्यायालय ने कहा कि धारा 197 को लागू करने के लिए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच प्रत्यक्ष और उचित संबंध होना चाहिए।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - कृत्य की गुणवत्ता - कृत्य की "गुणवत्ता" महत्वपूर्ण है, न कि केवल यह तथ्य कि यह आधिकारिक क्षमता में रहते हुए किया गया था।

ई. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - शक्ति का दुरुपयोग नहीं - शक्ति का दुरुपयोग या दुरुपयोग के कार्य, जैसे दस्तावेजों को गढ़ना या आपराधिक षड्यंत्रों में शामिल होना, धारा 197 के अंतर्गत नहीं आते हैं।

एफ. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - मंजूरी पर विचार करने का समय - शिकायत चरण तक सीमित नहीं - न्यायालय ने माना कि मंजूरी का प्रश्न कार्यवाही के किसी भी चरण में उठ सकता है, न कि केवल शिकायत दर्ज करने के समय।

जी. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - परीक्षण के दौरान साक्ष्य - अभियुक्त परीक्षण के दौरान यह दिखाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है कि कृत्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए थे।

एच. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - झूठे मामले और धारा 197 - झूठा मामला दर्ज करना - झूठा मामला दर्ज करना आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया कार्य नहीं माना जा सकता है।

I. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - मंजूरी की आवश्यकता नहीं - यदि कोई मामला झूठा पाया जाता है, तो अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता लागू नहीं होती है।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - लोक सेवक और आपराधिक आचरण - ईमानदार अधिकारियों के लिए संरक्षण - यह प्रावधान ईमानदार और निष्ठावान अधिकारियों की सुरक्षा के लिए है जो सार्वजनिक हित में अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं।

के. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - आपराधिक कृत्यों के लिए कोई प्रतिरक्षा नहीं - लोक सेवक आपराधिक कृत्यों को छिपाने के लिए अपने पद का उपयोग नहीं कर सकते।

एल. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - न्यायिक दृष्टिकोण - तथ्यात्मक विश्लेषण - न्यायालयों को यह निर्धारित करने के लिए तथ्यात्मक स्थिति का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए कि कोई कार्य धारा 197 के अंतर्गत आता है या नहीं।

एम. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - समय से पूर्व रोक से बचें - साक्ष्य को नुकसान पहुंचाने से बचने के लिए आपराधिक मुकदमों को प्रारंभिक चरण में समय से पूर्व नहीं रोका जाना चाहिए।

एन. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - मामले के विशिष्ट तथ्य - अलीबाई मामला - न्यायालय ने नोट किया कि अलीबाई बनाने के लिए झूठी एफआईआर दर्ज करना धारा 197 के तहत संरक्षण के लिए योग्य नहीं है।

ओ. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 197 - ट्रायल कोर्ट की भूमिका - ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया गया कि वह मुकदमे को आगे बढ़ाए और साक्ष्य के आधार पर उपयुक्त स्तर पर मंजूरी के सवाल पर फैसला करे।

प्रलय

जे.बी. पारदीवाला, जे. - छुट्टी मंजूर।

2. ये अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 19.04.2018 को आपराधिक विविध रिट आवेदन संख्या 4080/2009 और 32494/2009 में प्रतिवादी क्रमांक द्वारा दायर क्रमशः सामान्य निर्णय और आदेश से उत्पन्न हुई हैं। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में, "सीआरपीसी") की धारा 482 के तहत क्रमशः 1, 3, 4 और 5, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने आवेदनों को स्वीकार कर लिया और केस संख्या 67/2008 (राज्य बनाम निरंजन कुमार उपाध्याय) के साथ-साथ केस संख्या 67/2009 (राज्य बनाम राम प्रकाश गुनकर और अन्य) की कार्यवाही को रद्द कर दिया, जो सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष लंबित थे, दोनों ही केस अपराध संख्या 617/2007 से उत्पन्न हुए थे, जो भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में, "आईपीसी") की धाराओं 147, 148, 149, 307, 302, 201 और 120-बी के

तहत दंडनीय अपराध के लिए दक्षिण पुलिस स्टेशन, जिला फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में पंजीकृत थे।

ए. तथ्यात्मक मैट्रिक्स

3. दिनांक 12.10.2007 को प्रातः 09:15 बजे, ओम प्रकाश यादव (इसके पश्चात, "अपीलकर्ता") ने दक्षिण पुलिस स्टेशन, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में क्रमशः आईपीसी की धाराओं 147, 148, 149, 302 और 307 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमा अपराध संख्या 617/2007 के रूप में प्रथम सूचना रिपोर्ट (इसके पश्चात, "एफआईआर") दर्ज कराई, जिसमें सुरेन्द्र सिंह गुर्जर, वीरभान गुर्जर, अशोक दीक्षित, पप्पू दीक्षित, संजय दीक्षित और तीन अन्य के खिलाफ मामला दर्ज कराया गया। एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि अपीलकर्ता के भाई सुमन प्रकाश यादव जो तिलक इंटर कॉलेज, फिरोजाबाद में शिक्षक थे, की हत्या कर दी गई और उनके भाई के बेटे हर्ष (लगभग $4^{1/2}$ वर्ष) को उपरोक्त अभियुक्तों ने 12.10.2007 को सुबह 08:30 बजे सुहागनगर क्रॉसिंग के पास अपने हैंडगन से अंधाधुंध फायरिंग करके गंभीर रूप से घायल कर दिया। अपीलकर्ता ने दावा किया कि इस घटना को उसने और कई अन्य लोगों ने देखा था।

4. उसी दिन, मध्य प्रदेश के ग्वालियर के मुरार पुलिस स्टेशन में केस क्राइम नंबर 967/2007 के रूप में मध्य प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915 (इसके बाद, "आबकारी अधिनियम") की धारा 34 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए अशोक दीक्षित के खिलाफ केस क्राइम नंबर 617/2007 का मुख्य आरोपी दर्ज किया गया। हेड कांस्टेबल राम बरन सिंह यादव (इसके बाद, "प्रतिवादी नंबर 5") द्वारा दर्ज की गई एफआईआर में कहा गया है कि क्षेत्र में गश्त के दौरान एक मुखबिर से मिली सूचना के आधार पर, आरोपी अशोक दीक्षित को थाटीपुर चौराहे के पास 12 बोतल अवैध विदेशी शराब ले जाने के आरोप में गिरफ्तार किया गया। इसमें कहा गया कि प्रतिवादी नंबर 5 ने थाटीपुर चौकी, मुरार पुलिस स्टेशन के एएसआई राम प्रकाश गुनकर (इसके बाद, "प्रतिवादी क्रमांक 4") और हेड कांस्टेबल विजय बहादुर सिंह (इसके बाद, "प्रतिवादी क्रमांक 3") के साथ मिलकर अवैध शराब जब्त की थी और आरोपी को 12.10.2007 को सुबह लगभग 09:30 बजे गिरफ्तार किया था। यह भी बताया गया कि आरोपी अशोक दीक्षित को बाद में उसी दिन मुरार पुलिस स्टेशन के स्टेशन हाउस ऑफिसर (इसके बाद, "एसएचओ") डीएस खुशावा द्वारा आवश्यक जमानत प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा कर दिया गया था, क्योंकि आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध जमानती था। 26.10.2007 को, संबंधित आईओ ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (इसके बाद, "सीजेएम"), ग्वालियर के समक्ष अशोक दीक्षित के खिलाफ मामला अपराध संख्या 967 / 2007 के संबंध में आरोप पत्र प्रस्तुत किया था।

5. दक्षिण, फिरोजाबाद में जांच अधिकारी (इसके बाद, "आईओ") ने आगे की जांच की और केस क्राइम नंबर 617/2007 के संबंध में धारा 161 सीआरपीसी के तहत कई गवाहों के बयान दर्ज किए। 05.01.2008 को, सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष 12 व्यक्तियों अर्थात् अशोक दीक्षित, पप्पू दीक्षित, संजय दीक्षित, सुरेंद्र सिंह गुर्जर, वीरभान गुर्जर, संदीप, स्वदेश भारद्वाज, आशु, सुरेश, पंचम, राजेश और देवेंद्र के खिलाफ आरोप पत्र संख्या 3/2008 प्रस्तुत किया गया था। हालांकि, चार्जशीट में कहा गया है कि निरंजन कुमार उपाध्याय (इसके बाद, "प्रतिवादी नंबर 1"), प्रतिवादी नंबर 3, प्रतिवादी नंबर 4, प्रतिवादी नंबर के खिलाफ जांच 5 और दो अन्य व्यक्तियों के खिलाफ आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत मुरार, ग्वालियर में कथित तौर पर आरोपी अशोक दीक्षित को बचाने के उद्देश्य से दर्ज की गई एफआईआर के संबंध में मामला अभी भी लंबित है।

6. तत्पश्चात, 23.01.2008 को दक्षिण, फिरोजाबाद के जांच अधिकारी ने सीआरपीसी की धारा 161 के अंतर्गत ग्वालियर के मुरार पुलिस स्टेशन के एसएचओ डीएस खुशावा, प्रतिवादी संख्या 3, प्रतिवादी संख्या 4 और प्रतिवादी संख्या 5 के बयान दर्ज किए।

7. इसके तुरंत बाद, 30.01.2008 को, दक्षिण, फिरोजाबाद के जांच अधिकारी ने सीजेएम, ग्वालियर, मध्य प्रदेश के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अनुरोध किया गया कि आरोपी अशोक दीक्षित के खिलाफ उनके समक्ष लंबित आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध संख्या 967/2007 से संबंधित मामला संख्या 15003/2007 की कार्यवाही पर रोक लगाई जाए। आवेदन में आरोप लगाया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 जो ग्वालियर में टाउन इंस्पेक्टर (संक्षेप में, "टीआई") के रूप में तैनात था, आरोपी अशोक दीक्षित का रिश्तेदार था। यह भी आरोप लगाया गया कि प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 ने क्रमशः आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत एक फर्जी मामला बनाकर आरोपी को हत्या के अपराध से बचाने की साजिश रची थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य आरोपी को फिरोजाबाद में किए गए कथित अपराध के लिए बहाना प्रदान करना था। फिरोजाबाद में घटना सुबह 08:30 बजे हुई जबकि ग्वालियर में घटना उसी दिन सुबह 09:30 बजे हुई। ग्वालियर और फिरोजाबाद के बीच की दूरी 160 किलोमीटर है, इसलिए इसे सड़क मार्ग से एक घंटे में तय नहीं किया जा सकता था। आवेदन में कहा गया है कि चूंकि आरोपी अशोक दीक्षित हत्या के अपराध से खुद को बचाने के लिए आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के संबंध में अपना अपराध स्वीकार कर सकता है, इसलिए यदि केस नंबर 15003/2007 की कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाती है तो सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष लंबित केस क्राइम नंबर 617/2007 की कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

8. उपरोक्त आवेदन पर उचित विचार करने के पश्चात, सीजेएम, ग्वालियर ने अपने आदेश दिनांक 05.02.2008 के माध्यम से, मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर के एसएचओ को न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। 12.02.2008 को, प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के बयान क्रमशः मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर के एसएचओ द्वारा दर्ज किए गए और 17.02.2008 को सीजेएम, ग्वालियर के समक्ष एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। जांच रिपोर्ट के अवलोकन के पश्चात, सीजेएम, ग्वालियर ने अपने आदेश दिनांक 23.02.2008 के माध्यम से, दक्षिण, फिरोजाबाद में आईओ द्वारा दायर आवेदन दिनांक 20.01.2008 को निराधार होने के कारण खारिज कर दिया।

9. 14.04.2008 को दक्षिण, फिरोजाबाद के जांच अधिकारी ने सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 तथा दो अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए आवेदन दायर किया। उक्त आवेदन के अनुसरण में, 21.04.2008 को सीजेएम, फिरोजाबाद ने उपरोक्त 6 अभियुक्तों के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 शामिल थे। हालांकि, फिरोजाबाद के जांच अधिकारी का मामला यह है कि प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 फरार थे और इसलिए, उनके विरुद्ध क्रमशः धारा 82 और 83 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही भी शुरू की गई और पूरी की गई।

10. 02.05.2008 को दक्षिण, फिरोजाबाद के जांच अधिकारी ने डीआईजी, ग्वालियर, मध्य प्रदेश के समक्ष डीआईजी, आगरा, उत्तर प्रदेश के माध्यम से एक आवेदन दायर किया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 के खिलाफ मुकदमा चलाने की अनुमति मांगी गई। इसके अलावा, 07.05.2008 को पुलिस अधीक्षक, फिरोजाबाद ने भी डीआईजी, ग्वालियर को एक पत्र भेजा, जिसमें धारा 197 सीआरपीसी के तहत मुकदमा चलाने की अनुमति मांगी गई ताकि प्रतिवादियों को चार्जशीट किया जा सके।

11. इस बीच, प्रतिवादी संख्या 1 ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 10181/2008 प्रस्तुत की और दिनांक 23.07.2008 के आदेश द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी गई।

12. 30.07.2008 को पुलिस अधीक्षक, फिरोजाबाद ने प्रतिवादियों के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए धारा 197 सीआरपीसी के तहत मंजूरी देने के लिए डीआईजी, ग्वालियर को एक और पत्र लिखा। हालांकि, 02.08.2008 को डीआईजी, ग्वालियर ने पुलिस अधीक्षक, फिरोजाबाद को जवाब दिया, जिसमें उन्हें बताया गया कि आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के लिए मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर में दर्ज केस क्राइम नंबर 967/2007 के संबंध में मुकदमे के निपटारे तक अभियोजन की मंजूरी नहीं दी जा सकती।

13. दिनांक 28.08.2008 को, अपीलकर्ता ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ग्वालियर के समक्ष धारा 482 सीआरपीसी के तहत एक विविध आपराधिक मामला संख्या 5971/2008 दायर किया, जिसमें मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, ग्वालियर के न्यायालय में आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के लिए पंजीकृत मामला अपराध संख्या 967/2007 से उत्पन्न मामला संख्या 15003/2007 से संबंधित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई थी। वैकल्पिक रूप से, यह प्रार्थना की गई थी कि मामला अपराध संख्या 617/2007 के संबंध में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, फिरोजाबाद के समक्ष अशोक दीक्षित के खिलाफ लंबित मामले में निर्णय आने तक कार्यवाही रोक दी जाए। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 25.08.2009 के तहत मामला संख्या 15003/2007 में कार्यवाही पर निम्नलिखित अवलोकन करते हुए रोक लगा दी:

> "12. उपरोक्त विधिक स्थिति के आलोक में, अपीलकर्ता जो कि प्रतिवादी संख्या 2 के विरुद्ध फिरोजाबाद में दर्ज अपराध संख्या 617/2007 के संबंध में आपराधिक मामले में शिकायतकर्ता है, के पास सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत यह याचिका दायर करने का अधिकार है। अब मामले के विधिक पहलू और परिस्थितियों पर विचार किया जाना है। मान लीजिए कि तर्क के लिए, यदि प्रतिवादी संख्या 2 सीजेएम ग्वालियर की अदालत में लंबित आबकारी अधिनियम के मामले में अपना अपराध स्वीकार करता है, तो इसका क्या प्रभाव होगा? उसके पास यह साबित करने का अच्छा आधार होगा कि अपीलकर्ता के भाई की कथित हत्या के समय वह फिरोजाबाद में मौजूद नहीं था, बल्कि ग्वालियर में मौजूद था, जो कि फिरोजाबाद से 160 किलोमीटर दूर है। इसलिए यह उस मामले में बहुत बड़ा पूर्वाग्रह पैदा करेगा और दूसरी ओर, न्याय के हित में, यदि सीजेएम ग्वालियर की अदालत में लंबित कार्यवाही रोक दी जाती है, तो इससे प्रतिवादी संख्या 2 को कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा। इसके अलावा, यह दो अदालतों के परस्पर विरोधी निर्णयों से भी बच जाएगा। इसलिए, यह उचित है। यह न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने का अच्छा मामला है।
>
> 13. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, याचिका स्वीकार की जाती है और सीजेएम ग्वालियर की अदालत में आबकारी अधिनियम के संबंध में लंबित प्रकरण संख्या 15003/2007 के संबंध में आगे की कार्यवाही को अपराध संख्या 617/2007 के संबंध में फिरोजाबाद में लंबित आपराधिक मामले के निपटारे तक स्थगित किया जाता है।" (जोर दिया गया)

14. लगभग एक वर्ष की अवधि के बाद, 25.10.2008 को, दक्षिण, फिरोजाबाद में आईओ ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दो व्यक्तियों यानी रमेश यादव और

बारेलाल के बयान दर्ज किए। दोनों ने कहा कि उन्होंने प्रतिवादी संख्या 1 को आरोपी अशोक दीक्षित को बहाने का लाभ प्रदान करने के लिए आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत एक झूठा मामला बनाने में सीधे तौर पर शामिल होते देखा था। इसके तुरंत बाद, 03.11.2008 को, फिरोजाबाद में हुई हत्या की साजिश रचने में शामिल होने के लिए क्रमशः धारा 147, 148, 149, 307, 302, 201 और 120-बी आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध के लिए प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ 2008 की एक पूरक चार्जशीट संख्या 3 ए दायर की गई थी। फिरोजाबाद के जांच अधिकारी का मामला था कि आरोप पत्र इसलिए दायर किया गया क्योंकि उन्हें पता चला कि आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के लिए अशोक दीक्षित की गिरफ्तारी के समय प्रतिवादी संख्या 1 मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर में तैनात नहीं था और इसलिए, प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ सीआरपीसी की धारा 197 के तहत मंजूरी का प्रावधान लागू नहीं होगा। यहां यह देखना उचित है कि प्रतिवादी संख्या 1 का मामला यह है कि आरोप पत्र संख्या 3ए, 2008 को पिछली तारीख से 03.11.2008 को दायर किया गया था, जबकि वास्तव में इसे मजिस्ट्रेट के समक्ष 24.11.2008 को दायर किया गया था।

15. प्रतिवादी संख्या 1 की मां ने आरोप लगाया कि अपीलकर्ता प्रतिवादी संख्या 1 को हत्या के मामले में झूठा फंसाने की कोशिश कर रहा है, तथा उसने डीआईजी, फिरोजाबाद के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अनुरोध किया गया कि जांच को दक्षिण पुलिस स्टेशन से किसी अन्य पुलिस स्टेशन में स्थानांतरित किया जाए। डीआईजी, फिरोजाबाद ने दिनांक 11.11.2008 के आदेश के तहत वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, फिरोजाबाद (संक्षेप में, "एसएसपी") को मामले की जांच करने का निर्देश दिया। इसके बाद, एसएसपी ने दिनांक 14.11.2008 के पत्र के तहत सर्कल अधिकारी से मामले पर स्थिति रिपोर्ट मांगी। सर्कल अधिकारी द्वारा प्रस्तुत स्थिति रिपोर्ट से पता चला कि जबकि प्रतिवादी संख्या 1 ने उच्च न्यायालय से अपनी गिरफ्तारी पर रोक प्राप्त कर ली थी, अन्य आरोपियों की गिरफ्तारी लंबित थी और जांच अभी भी चल रही थी। इस पर विचार करने के पश्चात, एसएसपी, फिरोजाबाद ने दिनांक 20.11.2008 के आदेश द्वारा जांच को तत्काल प्रभाव से दक्षिण पुलिस स्टेशन से फिरोजाबाद के उत्तर पुलिस स्टेशन को स्थानांतरित कर दिया।

16. सीजेएम, फिरोजाबाद ने दिनांक 24.11.2008 के आदेश के तहत चार्जशीट संख्या 3ए/2008 का संज्ञान लिया। तत्काल, 28.01.2009 को, प्रतिवादी संख्या 1 ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 482 सीआरपीसी के तहत आपराधिक विविध आवेदन संख्या 4080/2009 प्रस्तुत किया, जिसमें सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष लंबित केस अपराध संख्या 617/2007 में उपरोक्त चार्जशीट से उत्पन्न केस संख्या 67/2008 (राज्य बनाम निरंजन कुमार उपाध्याय) में कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई।

17. बाद में, 25.02.2009 को, प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के मामले में क्रमशः धारा 147, 148, 149, 307, 302, 201 और 120-बी आईपीसी के तहत फिरोजाबाद में अपीलकर्ता के भाई की हत्या की साजिश में शामिल होने के लिए आरोप पत्र संख्या 30/2009 दायर किया गया था। सीजेएम, फिरोजाबाद ने 10.08.2009 के आदेश के तहत इसका संज्ञान लिया। 29.11.2009 को, प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 ने क्रमशः आपराधिक विविध होने के नाते एक आवेदन भी पेश किया। धारा 482 सीआरपीसी के तहत इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन संख्या 32494/2009, जिसमें सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष लंबित केस अपराध संख्या 617/2007 में उक्त आरोप पत्र से उत्पन्न केस संख्या 67ए/2009 (राज्य बनाम राम प्रकाश गुनकर एवं अन्य) की कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई थी।

18. उच्च न्यायालय में धारा 482 सीआरपीसी के तहत दायर उपरोक्त दो आवेदनों के लंबित रहने के दौरान, अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फिरोजाबाद की अदालत ने क्रमशः सत्र परीक्षण संख्या 753 और 753ए, 2008 को पूरा किया और दिनांक 10.07.2015 के निर्णय और आदेश के माध्यम से अशोक दीक्षित सहित सभी 12 आरोपियों को धारा 147, 148, 149, 307, 302 और 120-बी आईपीसी के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया, जिसके तहत उन पर आरोप लगाए गए थे। ट्रायल कोर्ट द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> "... आरोपी अशोक दीक्षित द्वारा दी गई "बयानबाजी" कि घटना के दिन वह पुलिस स्टेशन मुरार, जिला ग्वालियर में धारा 34, आबकारी अधिनियम के तहत जेल में बंद था, मुरार पुलिस अधिकारियों की असंगत रिपोर्ट के साथ थी और जांच के बाद आईओ ने एसएसपी, ग्वालियर और जेएम, ग्वालियर को अपनी रिपोर्ट सौंपी और कहा कि मामला झूठा था। उपरोक्त पुलिस अधिकारियों को विभागीय जांच करने के बाद निलंबित कर दिया गया है और उन्हें सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष प्रस्तुत आरोप पत्र में आरोपी अशोक दीक्षित के साथ मौत की साजिश रचने के लिए नामित किया गया है जिसमें उन्हें धारा 302, 120 बी आईपीसी के तहत आरोपित किया गया है।
>
> यह सही है कि 160 किलोमीटर की दूरी एक घंटे में तय नहीं की जा सकती और यदि अभियुक्त अशोक दीक्षित प्रातः 9.30 बजे मुरार, ग्वालियर में था तो वह प्रातः 8.30 बजे फिरोजाबाद में हुई घटना में सम्मिलित नहीं हो सकता। इस संबंध में अभियोजन पक्ष की ओर से तर्क दिया गया कि अभियुक्त अशोक दीक्षित एक शातिर अपराधी है। उसने स्वयं को हत्या के अपराध से बचाने के लिए मुरार थाना पुलिस, ग्वालियर से सांठगांठ कर वहां अपनी उपस्थिति दर्शाई। विवेचक एसएचओ श्री बलधारी सिंह ने वहां जाकर पूछताछ की तो पूरा मामला फर्जी पाया गया और विवेचक ने इस संबंध में एसएसपी ग्वालियर

को एक आवेदन दिया तथा जेएम ग्वालियर मध्य प्रदेश के समक्ष भी एक आवेदन प्रस्तुत किया और जांच को जारी रखते हुए पाया गया कि अभियुक्त अशोक दीक्षित को हत्या जैसे जघन्य अपराध से बचाने के लिए मुरार थाने की पुलिस द्वारा फर्जी गिरफ्तारी एवं जमानत पर रिहाई दर्शाई गई है। एसएसपी ग्वालियर ने जांच में सम्पूर्ण प्रकरण फर्जी पाते हुए उक्त मामले में संलिप्त समस्त अधिकारियों को निलम्बित कर उनके विरूद्ध विभागीय जांच प्रारम्भ कर दी है तथा उक्त प्रकरण में साक्ष्य संकलित कर उक्त पुलिस अधिकारियों निरंजन उपाध्याय, टीआई थाना मुरार, ग्वालियर एवं शैलेन्द्र सिंह व त्रिलोकी गौड़ तथा एएसआई पीपी गुनकर, प्रधान आरक्षक विजय बहादुर एवं प्रधान आरक्षक रामबरन यादव के विरूद्ध हत्या के षडयंत्र में सहयोग देने के सम्बन्ध में धारा 147, 148, 149, 307, 302, 201, 120बी आईपीसी के अन्तर्गत आरोप पत्र सीजेएम फिरोजाबाद के न्यायालय में दाखिल किया गया है। उक्त सम्बन्ध में सीजेएम फिरोजाबाद के न्यायालय में वाद संख्या 67ए/2008 राज्य बनाम निरंजन व अन्य विचाराधीन है तथा अभियुक्तगणों के गिरफ्तारी वारंट जारी किये गये हैं। इस सम्बन्ध में अभियोजन पक्ष की ओर से सीजेएम के न्यायालय में विचाराधीन उक्त पत्रावली तलब की गई, जो कि तत्काल सत्र परीक्षण की पत्रावली पर उपलब्ध है, जिससे स्पष्ट होता है कि अभियुक्त अशोक दीक्षित ने थाना मुरार, जिला ग्वालियर, मध्य प्रदेश के पुलिस अधिकारियों से सांठगांठ कर सुमन प्रकाश की हत्या के मामले से बचने के लिए आबकारी अधिनियम की धारा 34 के अन्तर्गत अपनी गिरफ्तारी दर्शाते हुए घटना के दिन प्रातः 9.30 बजे अपनी उपस्थिति दर्शाई है, जो कि जांच में फर्जी पाई गई तथा उक्त पुलिस अधिकारियों को हत्या के षडयंत्र में सम्मिलित करते हुए उनके विरूद्ध आरोप पत्र भी दाखिल किया जा चुका है तथा अभियुक्त अशोक दीक्षित को सजा से बचाने के लिए उक्त प्रकरण का मामला सीजेएम, फिरोजाबाद के न्यायालय में विचाराधीन है तथा सभी पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किया जा चुका है तथा एसएसपी ग्वालियर द्वारा उन्हें निलम्बित किया जा चुका है तथा उनके विरूद्ध विभागीय जांच भी प्रारम्भ की जा चुकी है। ये सभी पुलिस अधिकारी फरार हैं। इनके विरूद्ध सीजेएम न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा गिरफ्तारी वारंट जारी किया जा चुका है। अभियोजन पक्ष की ओर से सीजेएम की अदालत में लंबित केस संख्या 67 ए/2008 राज्य बनाम निरंजन एवं अन्य के आरोप पत्र की प्रति भी रिकॉर्ड में दाखिल की गई है।15003/2007 राज्य बनाम अशोक दीक्षित, धारा 34 आबकारी अधिनियम के अंतर्गत थाना मुरार में सीजेएम न्यायालय में लंबित मामले पर माननीय उच्च न्यायालय, ग्वालियर पीठ द्वारा विविध प्रकरण क्रमांक 5971 में पारित आदेश दिनांक 25.08.2009 द्वारा रोक लगा दी गई है। माननीय उच्च न्यायालय, ग्वालियर पीठ द्वारा पारित आदेश की प्रति 613बी/25 से 613बी/30 तक अभिलेख पर दाखिल है। उक्त

आदेश के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय में एसएलपी दाखिल की गई है, जिसे सुनवाई हेतु स्वीकार नहीं किया गया, उसकी प्रति 613बी/31 पर अभिलेख पर दाखिल है। अतः आबकारी अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत मामले का कोई लाभ अभियुक्त अशोक दीक्षित को नहीं दिया जा सकता है तथा प्रकरण 34 आबकारी अधिनियम के अंतर्गत घटना के समय मुरार, जिला ग्वालियर में उसकी उपस्थिति फर्जी पाई गई है तथा अभियुक्त ने पुलिस अधिकारियों से मिलीभगत कर अपना बचाव करने का फर्जी तर्क दिया है।" (जोर दिया गया)

19. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने आपराधिक विविध रिट आवेदन संख्या 4080/2009 और 32494/2009 पर समान रूप से सुनवाई की और 19.04.2018 के साझा निर्णय और आदेश के तहत उनका निपटारा किया। उच्च न्यायालय ने क्रमशः केस संख्या 67/2008 और 67ए/2009 की कार्यवाही को इस आधार पर रद्द कर दिया कि प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 पर क्रमशः धारा 197 सीआरपीसी के तहत मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी आवश्यक थी और चूंकि यह प्राप्त नहीं हुई थी, इसलिए मुकदमा आगे नहीं बढ़ सकता। प्रासंगिक टिप्पणियां नीचे पुन: प्रस्तुत की गई हैं:

"बेशक, आवेदक लोक सेवक हैं और सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन में हत्या के मुख्य आरोपी के खिलाफ धारा 34 आबकारी अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया था, लेकिन फिरोजाबाद में किए गए अपराध के लिए अभियोजन की मंजूरी मध्य प्रदेश राज्य द्वारा नहीं दी गई थी, जैसा कि पूरक हलफनामे के अनुलग्नक SA-I और SA-II से स्पष्ट है, फिरोजाबाद (यूपी) में पुलिस स्टेशन, दखिन के अधिकार क्षेत्र में किए गए अपराध के लिए आवेदकों पर मुकदमा चलाने की अनुमति दी गई थी। उपरोक्त परिस्थितियों में, आवेदकों के खिलाफ कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देना उचित नहीं होना चाहिए और यदि आवेदकों के खिलाफ कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाती है, तो यह कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं होगा।

उपरोक्त प्रस्तुत किए गए तथ्यों और चर्चा के आधार पर, आवेदन में सार है तथा उसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

तदनुसार, आवेदनों को अनुमति दी जाती है और सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष लंबित कार्यवाही केस संख्या 67/2008 (राज्य बनाम निरंजन कुमार उपाध्याय) के साथ-साथ केस संख्या 67ए/2009 (राज्य बनाम राम प्रकाश गुनकर और अन्य) के तहत केस अपराध संख्या 617/2007 से संबंधित आवेदन में धारा 147, 148, 149, 307, 302, 201, 120बी आईपीसी, पीएस दक्षिण, जिला फिरोजाबाद को रद्द किया जाता है।" (जोर दिया गया)

20. उपर्युक्त परिस्थितियों में, अपीलार्थी (शिकायतकर्ता) वर्तमान अपील के साथ इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित है।

बी. अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ

21. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रविन्द्र सिंह ने प्रस्तुत किया कि अभियुक्त अशोक दीक्षित द्वारा इस आधार पर दी गई अलीबाई की दलील कि आबकारी अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत अपराध के संबंध में उसकी गिरफ्तारी 12.10.2007 को प्रातः 09:30 बजे मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर, मध्य प्रदेश के अधिकारियों द्वारा की गई थी, पर फिरोजाबाद के ट्रायल कोर्ट द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 753 और 753ए/2008 में उचित रूप से विचार किया गया है। हालांकि, उक्त अलीबाई की दलील को ट्रायल कोर्ट ने अपने सुविचारित निर्णय के माध्यम से सीधे खारिज कर दिया। ट्रायल कोर्ट ने स्पष्ट रूप से देखा कि अभियुक्त अशोक दीक्षित ने मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर के पुलिस अधिकारियों के साथ मिलीभगत करके आबकारी अधिनियम की धारा 34 से संबंधित केस अपराध संख्या 967/2007 के अंतर्गत एक झूठा मामला दर्ज करवाने में कामयाबी हासिल की। ट्रायल कोर्ट ने आगे कहा कि जांच के दौरान ग्वालियर के मुरार में अशोक दीक्षित की मौजूदगी और गिरफ्तारी झूठी और फर्जी पाई गई और इसलिए अशोक दीक्षित के साथ मिलीभगत करने के लिए उन पुलिस अधिकारियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया। इसके अलावा, उन पुलिस अधिकारियों को भी निलंबित कर दिया गया है और उनके खिलाफ विभागीय जांच शुरू की गई है। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी नंबर 1 यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे दक्षिण पुलिस स्टेशन, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में आईपीसी की धारा 147, 148, 149, 307, 302, 201 और 120-बी के तहत अपराध के लिए दर्ज केस क्राइम नंबर 617/2007 में गलत तरीके से फंसाया गया है।

22. वकील ने दलील दी कि उच्च न्यायालय ने विवादित आदेश पारित करते समय गंभीर गलती की है। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करके अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाने का आरोप लगाया है कि निचली अदालत ने अशोक दीक्षित और अन्य आरोपियों के खिलाफ मामले का फैसला पहले ही कर दिया है। निचली अदालत ने केस क्राइम नंबर 617/2007 से उत्पन्न क्रमशः सत्र परीक्षण संख्या 753 और 753ए/2008 में अशोक दीक्षित को अपीलकर्ता के भाई की हत्या के अपराध का दोषी ठहराया।

23. अधिवक्ता ने कहा कि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को गलत तरीके से रद्द कर दिया है, क्योंकि आरोपी प्रतिवादी लोक सेवक हैं, इसलिए कथित अपराध के लिए मुकदमा चलाने की अनुमति आवश्यक है। यह कहा गया कि हत्या की साजिश रचने और झूठा मामला दर्ज करके बहाने बनाने के

कृत्य को आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में नहीं किया गया कहा जा सकता। यह भी कहा गया कि यहां दोषी सरकारी अधिकारी/प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए धारा 197 सीआरपीसी के तहत किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर में तैनात नहीं था, जहां मामला अपराध संख्या 967/2007 दर्ज किया गया था।

24. यह भी प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 ने ग्वालियर के मुरार पुलिस स्टेशन के पुलिस अधिकारियों के साथ मिलकर, आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत मामला अपराध संख्या 967/2007 पंजीकृत करवाने में कामयाबी हासिल की और इस तरह 12.10.2007 को सुबह 09:30 बजे यानी उसी दिन जब अपीलकर्ता के भाई की हत्या के संबंध में दक्षिण पुलिस स्टेशन, फिरोजाबाद में मामला अपराध संख्या 617/2007 पंजीकृत किया गया था, मुरार, ग्वालियर में अशोक दीक्षित की मौजूदगी को गलत तरीके से दिखाया। इसके अलावा, प्रतिवादी संख्या 1 ने अशोक दीक्षित को बचाने के लिए मुरार पुलिस स्टेशन की थाटीपुर चौकी से आबकारी अधिनियम के तहत एक व्यक्ति को संबंधित अदालत में पेश किए बिना रिहा करने के लिए अन्य प्रतिवादियों को प्रभावित भी किया था।

25. विद्वान अधिवक्ता ने रमेश यादव और बारेलाल के दिनांक 25.10.2008 के पुलिस बयानों पर भरोसा किया। उन्होंने स्वतंत्र गवाहों के रूप में स्पष्ट रूप से कहा है कि जब वे थाटीपुर, ग्वालियर में थे, "निरंजन उपाध्याय एक अन्य व्यक्ति के साथ कार से बाहर आए और कहा कि अशोक दीक्षित तुम चिंता मत करो, मैं तुम्हें हत्या के मामले से बचाऊंगा लेकिन तुम मेरा पीछा करते हो और 10-12 कार्टन व्हिस्की के साथ थाटीपुर, ग्वालियर में घूमना शुरू कर देते हो...."। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी संख्या 1 भी झूठी एफआईआर दर्ज कराने में सक्रिय रूप से शामिल था।

26. उपर्युक्त परिस्थितियों में, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उनकी अपील में योग्यता होने के कारण, उसे स्वीकार किया जा सकता है तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जा सकता है।

सी. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से प्रस्तुतियाँ

27. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बसंत ने दलील दी कि ऐसा कोई संकेत नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1 किसी भी तरह से केस क्राइम संख्या 967/2007 के पंजीकरण के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार था, क्योंकि वह न तो मुरार पुलिस स्टेशन में तैनात था और न ही उसने किसी संबंधित अधिकारी को ऐसी एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दिया था। वास्तव में, प्रतिवादी संख्या 1 12.10.2007 को केस क्राइम संख्या 967/2007 दर्ज करने के समय जिला शिवपुरी में तैनात था जो ग्वालियर से 120 किलोमीटर दूर है।

28. अधिवक्ता ने दलील दी कि प्रतिवादी संख्या 1 ने मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर में केस क्राइम संख्या 967/2007 में न तो एफआईआर दर्ज कराई थी और न ही वह किसी भी तरह से उक्त पुलिस स्टेशन से जुड़ा था। हालांकि, यह स्वीकार किए बिना कि उक्त एफआईआर प्रतिवादी संख्या 1 के कहने पर दर्ज की गई थी, केस क्राइम संख्या 617/2007 के संबंध में अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता है। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि डीआईजी, ग्वालियर ने अपने पत्र दिनांक 02.08.2008 के माध्यम से मंजूरी देने से इनकार कर दिया था।

29. वकील ने आगे कहा कि निम्नलिखित कारणों से प्रतिवादी नंबर 1 को दोषी ठहराए जाने की संभावना कम है - (क) प्रतिवादी नंबर 1 को मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर में तैनात नहीं किया गया था, जहां मामला अपराध संख्या 967/2007 दर्ज किया गया था, (ख) प्रतिवादी नंबर 1 की आयु 72 वर्ष है और कोई उद्देश्य हल नहीं होगा यदि प्रतिवादी नंबर 1 को इस स्तर पर मुकदमे का सामना करने के लिए बनाया जाता है, जब मामला अपराध संख्या 617/2007 को कथित तौर पर 2007 में दर्ज किया गया था, (ग) ट्रायल कोर्ट ने पहले ही 10.07.2015 में अपने फैसले के माध्यम से अशोक दीक्षित सहित सभी आरोपियों को दोषी ठहराया है, (घ) प्रतिवादी नंबर 1 2015 में पुलिस सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है और तब से 9 साल बीत चुके हैं, 1 मुरार पुलिस स्टेशन, ग्वालियर में मामला अपराध संख्या 967/2007 के पंजीकरण के कथित कृत्य के लिए, और (एफ) ऐसा कोई संकेत नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1 अभियुक्त अशोक दीक्षित से संबंधित है।

30. वकील ने दलील दी कि आरोप पत्र को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और हत्या की साजिश के कथित अपराध के लिए केस क्राइम नंबर 617/2007 के संबंध में प्रतिवादी नंबर 1 की संलिप्तता की किसी भी धारणा को पुष्ट करने के लिए कोई परिस्थिति या सबूत मौजूद नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि धारा 161 सीआरपीसी के तहत गवाहों के केवल दो बयान दर्ज किए गए हैं और ये बयान केस क्राइम नंबर 617/2007 के पंजीकरण की तारीख से एक वर्ष की अवधि यानी 25.10.2008 को यानी 12.10.2007 को दर्ज किए गए थे। ये दो बयान प्रतिवादी 1 के खिलाफ अभियोजन शुरू करने का एकमात्र आधार हैं। इसके अलावा, उक्त गवाहों की सुनवाई में जांच नहीं की गई, जिसके कारण अशोक दीक्षित सहित 12 आरोपियों को 10.07.2015 के आदेश के तहत दोषी ठहराया गया।

31. यह भी प्रस्तुत किया गया कि अभियोजन पक्ष के मामले में एक भौतिक विरोधाभास है। दो गवाहों, यानी रमेश और बारेलाल के बयानों से पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या 1 को ग्वालियर में अशोक दीक्षित के साथ देखा गया था क्योंकि उन्होंने शब्दशः यह गवाही दी थी कि उन्होंने प्रतिवादी संख्या 1 को अशोक दीक्षित से यह कहते हुए सुना था कि वे झूठे बहाने बनाएंगे। हालांकि, सभी प्रत्यक्षदर्शियों ने

यह गवाही दी है कि अशोक दीक्षित फिरोजाबाद में घटना स्थल पर मौजूद थे, जहां गोलीबारी हुई थी। ये दो विरोधाभासी बयान फिरोजाबाद और ग्वालियर में अशोक दीक्षित की मौजूदगी की पुष्टि करते हैं और इसलिए, एक-दूसरे के लिए स्पष्ट रूप से अपमानजनक हैं।

32. वकील ने दलील दी कि धारा 201 सीआरपीसी तत्काल तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होगी। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1 ने हत्या के अपराध के लिए अन्य सह-आरोपियों के साथ साजिश रची थी और आरोप पत्र से जो एकमात्र आरोप सामने आया है वह यह है कि ग्वालियर में आबकारी अधिनियम के तहत एफआईआर दर्ज करके अशोक दीक्षित को बचाने के लिए एक झूठा बहाना बनाया गया था। कथित कृत्य हत्या के अपराध के बाद किया गया था और रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे दूर से भी यह पता चले कि प्रतिवादी संख्या 1 को हत्या की घटना के बारे में जानकारी थी।

33. उपर्युक्त के आलोक में, वकील ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

डी. प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुतियां संख्या 3, 4 और 5.

34. प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 की ओर से पेश विद्वान वकील सुश्री ननिता शर्मा ने दलील दी कि उत्तर प्रदेश पुलिस उनके मुवक्किलों को धारा 302 और 120-बी आईपीसी के तहत अपराध के लिए झूठा फंसाने पर तुली हुई है। यह निम्नलिखित से स्पष्ट है - (ए) रमेश यादव और बारेलाल के बयान फिरोजाबाद में अपराध की तारीख यानी 12.10.2007 से एक साल के अंतराल के बाद धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए थे, (बी) आईओ द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपना बयान दर्ज करते समय दर्ज किए गए बारेलाल का पता गलत पाया गया और सरपंच की जानकारी के अनुसार, बारेलाल नाम का कोई व्यक्ति उक्त पते पर कभी नहीं रहा। गवाह बारेलाल का स्थायी पता क्षेत्र के पार्षद द्वारा 28.12.2008 को दिए गए प्रमाण पत्र के अनुसार भी अस्तित्व में नहीं था, (ग) रमेश यादव भी उस पते पर कभी नहीं रहा था जो उसने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज अपने बयान के दौरान जांच अधिकारी को दिया था और यह बात ग्वालियर के मुरार पुलिस स्टेशन के बड़ा गांव के सरपंच द्वारा जारी प्रमाण पत्र से भी स्पष्ट है।

35. वकील ने यह भी कहा कि प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 का नाम कभी भी केस क्राइम नंबर 617/2007 में दर्ज एफआईआर में नहीं लिया गया था और न ही उनके नाम कभी भी किसी गवाह द्वारा बताए गए थे, जिनके बयान फिरोजाबाद में अपराध के बाद आईओ द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए थे। यह कभी नहीं

बताया गया कि प्रतिवादियों और मुख्य आरोपी अशोक दीक्षित के बीच कोई साजिश थी। यह प्रस्तुत किया गया कि प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 या उनके परिवार के सदस्य न तो किसी भी तरह से आरोपी अशोक दीक्षित के रिश्तेदार हैं और न ही उन्हें जानते हैं।

36. वकील ने दलील दी कि फिरोजाबाद के आईओ ने प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 को फिरोजाबाद में हुई हत्या के मामले में झूठा फंसाया है, जबकि मामले में उनकी कोई भूमिका नहीं थी। उन्हें केवल दो पुलिस प्रतिष्ठानों के बीच प्रतिद्वंद्विता और डीआईजी, ग्वालियर द्वारा उन पर मुकदमा चलाने की अनुमति देने से इनकार करने के कारण फंसाया गया है। यह दलील दी गई कि प्रतिवादियों ने अशोक दीक्षित की गिरफ्तारी और रिहाई दोनों में किसी भी तरह की हेराफेरी का संदेह किए बिना केवल अपना कर्तव्य निभाया था क्योंकि वे केवल अपने वरिष्ठ अधिकारी यानी मुरार पुलिस स्टेशन के टीआई (एसएचओ), डीएस खुश्वा के निर्देशों का पालन कर रहे थे।

37. अंत में वकील ने दलील दी कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही को मंजूरी के अभाव में रद्द करना न्यायोचित था।

ई. निर्धारण हेतु मुद्दे

38. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करने के पश्चात, हमारे विचारार्थ एकमात्र मुद्दा यह है:

> क. क्या सीजेएम, फिरोजाबाद धारा 197 सीआरपीसी के तहत अभियोजन की मंजूरी के अभाव में क्रमशः प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 के खिलाफ आरोप पत्र संख्या 3ए, 2008 और आरोप पत्र संख्या 30, 2009 का संज्ञान ले सकते थे? दूसरे शब्दों में, क्या प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 द्वारा कथित तौर पर किया गया अपराध या कृत्य "आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते हुए या कार्य करने का दावा करते हुए" किया गया कहा जा सकता है?

एफ. विश्लेषण

39. धारा 197 सीआरपीसी इस प्रकार है:

> **"197. न्यायाधीशों और लोक सेवकों का अभियोजन।** (1) जब कोई व्यक्ति, जो न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या लोक सेवक है या था, जिसे सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के बिना उसके पद से हटाया नहीं जा सकता, किसी ऐसे अपराध का आरोपी है, जो उसके द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का प्रकल्पना करते समय किया गया अभिकथित है, तो कोई भी न्यायालय लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 (2014

का 1) में अन्यथा उपबंधित के सिवाय पूर्व मंजूरी के बिना ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा।

(क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकलाप के संबंध में केन्द्रीय सरकार में नियोजित है या, यथास्थिति, अभिकथित अपराध के किए जाने के समय नियोजित था;

(ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो राज्य के कार्यकलाप के संबंध में नियोजित है या, यथास्थिति, अभिकथित अपराध के किए जाने के समय नियोजित था, राज्य सरकार की:

परंतु जहां अभिकथित अपराध खंड (ख) में निर्दिष्ट व्यक्ति द्वारा उस अवधि के दौरान किया गया था जब संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा किसी राज्य में प्रवृत्त थी, वहां खंड (ख) इस प्रकार लागू होगा मानो उसमें आने वाले "राज्य सरकार" पद के स्थान पर "केन्द्रीय सरकार" पद रख दिया गया हो।

स्पष्टीकरण. शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि किसी लोक सेवक पर भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 166ए, धारा 166बी, धारा 354, धारा 354ए, धारा 354बी, धारा 354सी, धारा 354डी, धारा 370, धारा 375, 3 [धारा 376ए, धारा 376एबी, धारा 376सी, धारा 376डी, धारा 376डीए, धारा 376डीबी] या धारा 509 के अंतर्गत किए गए किसी अपराध का आरोप लगाए जाने की स्थिति में किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी।

(2) कोई भी न्यायालय संघ के सशस्त्र बलों के किसी सदस्य द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का प्रकल्पना रखते समय किए गए किसी अपराध का संज्ञान केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं लेगा।

(3) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि उपधारा (2) के उपबंध, लोक व्यवस्था बनाए रखने का कार्यभार संभालने वाले बलों के सदस्यों के ऐसे वर्ग या प्रवर्ग पर लागू होंगे, जैसा उसमें विनिर्दिष्ट किया जाए, जहां कहीं वे सेवा कर रहे हों, और तब उस उपधारा के उपबंध इस प्रकार लागू होंगे मानो उसमें आने वाले "केन्द्रीय सरकार" पद के स्थान पर "राज्य सरकार" पद रख दिया गया हो।

(3क) उपधारा (3) में किसी बात के होते हुए भी, कोई न्यायालय किसी ऐसे अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, जिसके बारे में यह अभिकथन है कि वह किसी राज्य में लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए नियुक्त बलों के किसी सदस्य द्वारा,

उस अवधि के दौरान अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का तात्पर्य रखते हुए किया गया है, जब संविधान के अनुच्छेद 356 के खंड (1) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा वहां प्रवृत्त थी, केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना।

(३ख) इस संहिता या किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, यह घोषित किया जाता है कि २० अगस्त, १९९१ को प्रारंभ होने वाली और दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, १९९१ (१९९१ का ४३) को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने की तारीख से ठीक पहले की तारीख को समाप्त होने वाली अवधि के दौरान, किसी अपराध के संबंध में, जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उस अवधि के दौरान किया गया है जब संविधान के अनुच्छेद ३५६ के खंड (१) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा राज्य में प्रवृत्त थी, राज्य सरकार द्वारा दी गई मंजूरी या ऐसी मंजूरी पर न्यायालय द्वारा लिया गया संज्ञान अवैध होगा और ऐसे मामले में मंजूरी देना केंद्रीय सरकार के लिए और न्यायालय के लिए उस पर संज्ञान लेना सक्षम होगा।

(4) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उस व्यक्ति का निर्धारण कर सकेगी जिसके द्वारा, वह रीति जिससे, तथा वह अपराध या अपराध जिनके लिए ऐसे न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या लोक सेवक के विरुद्ध अभियोजन चलाया जाना है, तथा वह न्यायालय विनिर्दिष्ट कर सकेगी जिसके समक्ष विचारण चलाया जाना है।"

40. भारतीय विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में धारा 197 सीआरपीसी के अधिनियमन के पीछे के उद्देश्य को संदर्भित किया गया है, जिसमें बताया गया है कि यह अधिक महत्वपूर्ण श्रेणियों के लोक सेवकों को, जो भारी और जिम्मेदार कार्य कर रहे हैं, झूठे, परेशान करने वाले या दुर्भावनापूर्ण मुकदमों से बचाकर निडर होकर कार्य करने में सक्षम बनाता है। पूर्ववर्ती दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के तहत, धारा का दायरा थोड़ा बहुत व्यापक माना जाता था क्योंकि इसमें लिखा था - "किसी भी अपराध के लिए ऐसे न्यायाधीश या लोक सेवक पर आरोप लगाया जाता है"। हालांकि, अधिक सटीकता प्रदान करने के लिए, 1923 के संशोधन अधिनियम में यह वाक्यांश जोड़ा गया - "अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का दावा करते समय उसके द्वारा किए गए किसी भी अपराध का आरोप लगाया जाता है"। समय के साथ कई संशोधनों से गुजरने के बावजूद आज तक इसे क़ानून की किताबों में बरकरार रखा गया है।

41. जैसा कि विधि आयोग ने सही माना है, धारा 197 सीआरपीसी में "कार्य करना या कार्य करने का अभिप्राय" शब्द का अर्थ संघीय न्यायालय, प्रिवी काउंसिल और सर्वोच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा अच्छी तरह से निर्धारित किया गया है और

जो भी कठिनाई महसूस की जा सकती है, वह केवल इन निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर वास्तविक रूप से लागू करने में निहित है। दूसरे शब्दों में, यह प्रश्न कि क्या कोई विशेष कार्य किसी लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया है, मूल रूप से तथ्य का प्रश्न है, जिसे प्रत्येक मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में निर्धारित किया जाना है।

42. धारा 197 सीआरपीसी की प्रयोज्यता कई मामलों में न्यायिक व्याख्या का विषय रही है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण मामलों में से एक, जिसने "किया गया या किया जाने का अभिप्राय वाला कोई कार्य" अभिव्यक्ति के सार की जांच की, वह **डॉ. होरी राम सिंह बनाम द क्राउन में संघीय न्यायालय का निर्णय था, जिसकी रिपोर्ट एआईआर 1939 एफसी 43 में दी गई थी** । उनके आधिपत्य को भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 270 की प्रयोज्यता पर विचार करने के लिए कहा गया था, जो यद्यपि समान नहीं थी, लेकिन धारा 197 सीआरपीसी के समान थी। न्यायालय ने माना कि धारा 409 आईपीसी के तहत एक लोक सेवक द्वारा आपराधिक विश्वासघात के संबंध में अपराध के लिए राज्यपाल की सहमति की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि यह उसके कर्तव्य के निष्पादन में नहीं किया जा सकता है या किया जाने का अभिप्राय नहीं है, फिर भी धारा 477ए आईपीसी के तहत खातों के मिथ्याकरण के संबंध में अपराध के लिए राज्यपाल की सहमति की आवश्यकता होगी। "किया जाने का अभिप्राय" शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की गई:

> "संरक्षण की सीमा। जाहिर है, धारा का यह मतलब नहीं है कि वह कार्य जो आरोप का मुख्य कारण है और अपराध का गठन करता है, वह क्राउन के सेवक का आधिकारिक कर्तव्य होना चाहिए। इस तरह की व्याख्या में शब्दों में विरोधाभास शामिल होगा, क्योंकि अपराध कभी भी आधिकारिक कर्तव्य नहीं हो सकता। धारा में इस्तेमाल किए गए शब्द "किसी आधिकारिक कर्तव्य के संबंध में" नहीं हैं, बल्कि "अपने कर्तव्य के निष्पादन में किए गए या किए जाने का इरादा रखने वाले किसी कार्य के संबंध में" हैं। दोनों अभिव्यक्तियाँ स्पष्ट रूप से समान नहीं हैं। अपराध तब किया जाना चाहिए था जब कोई कार्य कर्तव्य के निष्पादन में किया गया हो या जब कोई कार्य कर्तव्य के निष्पादन में किए जाने का इरादा रखता हो। स्पष्ट रूप से किसी कार्रवाई के दौरान किए गए अपराध का संदर्भ, जो आधिकारिक कर्तव्य के अनुपालन में किया गया हो या किए जाने का इरादा रखता हो, और वास्तव में उससे जुड़ा हो। परीक्षण यह प्रतीत नहीं होता है कि अपराध केवल एक लोक सेवक द्वारा किया जा सकता है और किसी अन्य द्वारा नहीं, बल्कि यह कि यह एक लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निष्पादन में किए गए या किए जाने का इरादा रखने वाले कार्य में किया गया है। यह धारा केवल ऐसे कार्यों तक सीमित नहीं हो सकती जो किसी

> लोक सेवक द्वारा अपने सार्वजनिक पद के अनुसरण में सीधे किए जाते हैं, यद्यपि कि वे कर्तव्य से अधिक हों या ऐसे कर्तव्य के अस्तित्व के बारे में गलत धारणा के तहत किए गए हों। न ही यह कहने की आवश्यकता है कि अपराध का गठन करने वाला कार्य आधिकारिक कर्तव्य से इस तरह से अविभाज्य रूप से जुड़ा होना चाहिए कि वह उसी लेन-देन का अभिन्न अंग बन जाए। यदि शिकायत किया गया कार्य अपराध है, तो यह अनिवार्य रूप से कर्तव्य का निष्पादन नहीं, बल्कि उसका परित्याग होना चाहिए। आवश्यक बात यह है कि अपराध कर्तव्य के निष्पादन में किए गए या किए जाने का अभिप्राय वाले कार्य के संबंध में होना चाहिए, अर्थात आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में। यह उस आधिकारिक क्षमता में किया जाना अभिप्रायित होना चाहिए जिसका वह उस समय दिखावा करता है, अर्थात एक स्पष्ट रूप से आधिकारिक कार्य की आड़ में, हालांकि, निश्चित रूप से, अपराध वास्तव में कर्तव्य के उल्लंघन के बराबर होगा। कोई कार्य कर्तव्य के निष्पादन में किया गया नहीं माना जा सकता जब तक कि अपराधी यह दावा न करे कि वह अपने आधिकारिक कर्तव्य के अनुसरण में कार्य कर रहा है और उसका उद्देश्य किसी अन्य के मन में यह धारणा पहुंचाना हो कि वह ऐसा कार्य कर रहा है।
>
> यह धारा किसी लोक सेवक द्वारा पूरी तरह से निजी हैसियत में किए गए कार्यों पर लागू होने के लिए अभिप्रेत नहीं है। यह उसके द्वारा अपने कर्तव्य के निष्पादन में आधिकारिक हैसियत में किया गया होगा, जो कि केवल इसलिए आवश्यक नहीं होगा कि यह उस समय किया गया था जब वह उस पद पर था, न ही इसलिए कि वह उस समय अपने आधिकारिक व्यवसाय में व्यस्त था। उदाहरण के लिए, यदि कोई लोक सेवक अपने कार्यालय में वास्तव में किसी आधिकारिक कार्य में लगे हुए रहते हुए पुरस्कार के रूप में रिश्वत स्वीकार करता है, तो वह अपनी आधिकारिक हैसियत में भी इसे स्वीकार नहीं कर रहा है, किसी आधिकारिक कर्तव्य के निष्पादन में तो बिल्कुल भी नहीं, हालांकि यह पूरी तरह से निश्चित है कि वह कभी भी रिश्वत नहीं ले सकता था जब तक कि वह किसी आधिकारिक कार्य का प्रभारी अधिकारी न हो। वह रिश्वत देने वाले व्यक्ति के सामने यह दिखावा भी नहीं करता कि वह अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में काम कर रहा है, बल्कि वह केवल अवैध परितोषण प्राप्त करने के लिए अपने आधिकारिक पद का उपयोग करता है।" (जोर दिया गया)

43. माननीय न्यायाधीश सुलेमान ने स्पष्ट किया कि आरोप के केंद्र में जो कार्य है, उसके लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह लोक सेवक का आधिकारिक कर्तव्य हो। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोई अपराध कभी भी किसी के आधिकारिक कर्तव्य का हिस्सा नहीं हो सकता और प्रावधान के अधिनियमन के पीछे की मंशा को ही विफल कर देता है। इसके बजाय, प्रावधान का सार यह था कि अपराध कर्तव्य के

निष्पादन में किए गए या किए जाने का दावा किए गए कार्य के संबंध में होना चाहिए, अर्थात आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में। यद्यपि अपराध वास्तव में कर्तव्य का उल्लंघन होगा, लेकिन इसे उस आधिकारिक क्षमता में किया जाना चाहिए, जिसका अधिकारी उस समय दिखावा कर रहा था। हालांकि, यह स्पष्ट किया गया कि प्रावधान को लोक सेवक द्वारा पूरी तरह से निजी क्षमता में किए गए कार्यों पर लागू नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि केवल उन कार्यों पर लागू किया जाना चाहिए, जो उसके द्वारा आधिकारिक क्षमता में और अपने कर्तव्य के निष्पादन में किए गए प्रतीत होते हैं। इसलिए, केवल इसलिए कि कार्य उस समय किया गया था जब वह ऐसे पद पर था या जब वह अपने आधिकारिक व्यवसाय में व्यस्त था, यह धारा स्वतः लागू नहीं होगी।

44. माननीय न्यायाधीश वरदाचार्य ने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि यह प्रश्न कि शिकायत की गई कार्रवाई एक लोक सेवक के रूप में "अपने कर्तव्य के निष्पादन में किए जाने का दावा करती है" या नहीं, मूल रूप से तथ्य पर आधारित है, जिसे शिकायत की गई कार्रवाई और उससे जुड़ी परिस्थितियों के संदर्भ में निर्धारित किया जाना है। इस संबंध में कोई सख्त और तेज़ परीक्षण निर्धारित करना न तो बुद्धिमानी होगी और न ही वांछनीय।

45. गिल और अन्य बनाम किंग में प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति को एआईआर 1948 पीसी 128 में रिपोर्ट की गई थी , जिसके अनुसार रिश्वतखोरी और/या रिश्वत लेने की साजिश के आरोप में लोक सेवक के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए धारा 197 सीआरपीसी के तहत मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, यह तय करना था। न्यायालय का मत था कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 270 और धारा 197 सीआरपीसी के बीच अंतर करना असंभव था, कम से कम इस तरह के अपराधों के संबंध में। इसलिए, **डॉ. होरी राम सिंह** (सुप्रा) में निर्णय धारा 197 से संबंधित मामलों में भी बहुत सहायक होगा। यह देखा गया कि एक लोक सेवक को केवल तभी अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करने वाला या कार्य करने का दावा करने वाला कहा जा सकता है, यदि उसका कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे में आता है। इसलिए, परीक्षण यह हो सकता है कि क्या लोक सेवक, यदि चुनौती दी जाती है, तो उचित रूप से दावा कर सकता है कि वह जो करता है, वह अपने पद के कारण करता है। प्रासंगिक टिप्पणियां नीचे पुन: प्रस्तुत हैं:

> "किसी लोक सेवक को केवल तभी अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करने का अभिप्राय माना जा सकता है, यदि उसका कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे में आता है। इस प्रकार, एक न्यायाधीश न तो रिश्वत लेने में न्यायाधीश के रूप में कार्य करता है और न ही कार्य करने का अभिप्राय रखता है, भले ही वह जो निर्णय देता है वह ऐसा कार्य हो सकता है: न

> ही एक सरकारी चिकित्सा अधिकारी किसी रोगी की जेब काटने में लोक सेवक के रूप में कार्य करता है या कार्य करने का अभिप्राय रखता है, जिसकी वह जांच कर रहा है, भले ही जांच स्वयं ऐसा कार्य हो। परीक्षण यह हो सकता है कि क्या लोक सेवक, यदि चुनौती दी जाती है, तो उचित रूप से यह दावा कर सकता है कि वह जो करता है, वह अपने पद के कारण करता है" वर्तमान मामले में इस तरह के परीक्षण को लागू करने पर, यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गिल उन कार्यों को उचित नहीं ठहरा सकते थे, जिनके संबंध में उन पर आरोप लगाया गया था, क्योंकि वे अपने पद के कारण किए गए कार्य थे। अधिकारियों की आगे की जांच किए बिना, उनके आधिपत्य, उद्धृत मामले में संघीय न्यायालय की राय से खुद को सामान्य रूप से सहमत पाते हुए, यह कहना पर्याप्त समझते हैं कि उनकी राय में धारा के तहत कोई मंजूरी नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अंतर्गत कार्रवाई की आवश्यकता थी।" (जोर दिया गया)

46. **अल्बर्ट वेस्ट मीड्स बनाम द किंग मामले में, जैसा कि एआईआर 1948 पीसी 156 में रिपोर्ट किया गया था** , प्रिवी काउंसिल ने **गिल** (सुप्रा) में लिए गए दृष्टिकोण को दोहराया और माना कि उस मामले में अपीलकर्ता यह उचित नहीं ठहरा सकता कि एक लोक सेवक के रूप में उसकी देखभाल में सौंपी गई धनराशि का धोखाधड़ी से दुरुपयोग करने का कार्य उसके द्वारा अपने पद के आधार पर किया गया कार्य था।

47. **श्रीकांतिया रामय्या मुनिपल्ली बनाम बॉम्बे राज्य (1954) 2 एससीसी 992 में** , इस न्यायालय ने जोर देकर कहा कि प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। इस मामले में, खंडपीठ ने कहा कि धारा 197 सीआरपीसी को कभी भी लागू नहीं किया जा सकता है यदि इसे बहुत संकीर्ण रूप से समझा जाए क्योंकि अपराध करना किसी अधिकारी के कर्तव्य का हिस्सा नहीं है और प्रावधान की भाषा को उसका सही अर्थ दिया जाना चाहिए। हालाँकि, यह कर्तव्य नहीं बल्कि कार्य है जिसकी जाँच की जानी चाहिए क्योंकि एक आधिकारिक कार्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के साथ-साथ इसके उल्लंघन में भी किया जा सकता है। प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

> "14. अब यह स्पष्ट है कि यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 को बहुत संकीर्ण रूप से समझा जाता है तो इसे कभी भी लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि निश्चित रूप से अपराध करना किसी अधिकारी के कर्तव्य का हिस्सा नहीं है और कभी हो भी नहीं सकता। लेकिन हमें कर्तव्य की नहीं बल्कि कृत्य की जांच करनी है, क्योंकि आधिकारिक कृत्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन

> में भी किया जा सकता है और उसके प्रति लापरवाही में भी। धारा में विषय-वस्तु है और इसकी भाषा को अर्थ दिया जाना चाहिए। ..." (जोर दिया गया)

48. **अमरीक सिंह बनाम पेप्सू राज्य में एआईआर 1955 एससी 309 में रिपोर्ट की गई** , अपीलकर्ता पर एक व्यक्ति के अंगूठे के निशान को जाली बनाने के लिए धारा 465 आईपीसी के तहत और एक निश्चित राशि के आपराधिक दुरुपयोग के लिए धारा 409 आईपीसी के तहत आरोप लगाया गया था। न्यायालय ने कहा कि यदि शिकायत की गई कार्रवाई सीधे तौर पर लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्य से संबंधित है, ताकि यदि पूछताछ की जाए, तो यह दावा किया जा सके कि यह कार्यालय के आधार पर किया गया है, तो मंजूरी आवश्यक होगी। यह इस बात पर ध्यान दिए बिना होगा कि क्या यह वास्तव में उसके कर्तव्यों का उचित निर्वहन था, क्योंकि यह वास्तव में गुण-दोष के आधार पर बचाव का मामला होगा, जिसकी जांच मुकदमे के दौरान की जानी चाहिए और अभियोजन के लिए मंजूरी देने के चरण में इसकी जांच नहीं की जानी चाहिए। इसलिए, यह परीक्षण कि क्या लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी आवश्यक है, इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या शिकायत की गई कार्रवाई लोक सेवक के रूप में उसके कर्तव्यों से इतनी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। यदि वे ऐसा करते हैं, तो मंजूरी आवश्यक है और ऐसा कोई एक समान नियम नहीं हो सकता है कि आपराधिक दुर्विनियोजन या आपराधिक विश्वासघात का अपराध हमेशा धारा 197 सीआरपीसी के दायरे से बाहर होगा। प्रासंगिक टिप्पणियां नीचे पुन: प्रस्तुत की गई हैं:

> "7. प्राधिकारियों के परिणाम का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के अंतर्गत लोक सेवक द्वारा किए गए प्रत्येक अपराध के लिए अभियोजन स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है; न ही उसके द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य के लिए, जब वह वास्तव में अपने पदीय कर्तव्यों का पालन कर रहा हो; लेकिन यदि जिस कार्य की शिकायत की गई है, उसका उसके पदीय कर्तव्यों से सीधा संबंध है, ताकि यदि उस पर प्रश्न उठाया जाए, तो यह दावा किया जा सके कि वह पद के कारण किया गया है, तो स्वीकृति आवश्यक होगी; और ऐसा होगा, भले ही वह वास्तव में उसके कर्तव्यों का उचित निर्वहन हो या नहीं, क्योंकि यह वास्तव में गुण-दोष के आधार पर बचाव का मामला होगा, जिसकी जांच मुकदमे के दौरान करनी होगी, और स्वीकृति प्रदान करने के चरण में यह उत्पन्न नहीं हो सकता, जो अभियोजन की स्थापना से पहले होना चाहिए।
>
> 8. ... हमारे निर्णय में, भले ही आरोप किसी लोक सेवक द्वारा गबन का हो, धारा 197(1) के तहत मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। यदि शिकायत किए गए कार्य कार्यालय से जुड़े कर्तव्यों

> से इतने अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं कि उनसे अलग नहीं हो सकते, तो धारा 197(1) के तहत मंजूरी आवश्यक होगी; लेकिन यदि उनके और उन कर्तव्यों के प्रदर्शन के बीच कोई आवश्यक संबंध नहीं है, आधिकारिक स्थिति केवल कार्यों के लिए अवसर या अवसर प्रदान करती है, तो किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी।
>
> xxx
>
> xxx
>
> xxx
>
> 11. ... इसका परिणाम यह है कि आपराधिक दुर्विनियोजन के आरोप में लोक सेवक पर मुकदमा चलाने के लिए अनुमति आवश्यक है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि शिकायत किए गए कार्य लोक सेवक के रूप में उसके कर्तव्यों पर निर्भर हैं या नहीं। यदि वे हैं, तो अनुमति आवश्यक है। लेकिन यदि वे ऐसे कर्तव्यों से जुड़े नहीं हैं, तो कोई अनुमति आवश्यक नहीं है। (जोर दिया गया)

49. माताजोग डोबे बनाम एचसी भारी में इस न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ ने **एआईआर 1956 एससी 44 में रिपोर्ट** दी कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत थोड़े अलग परीक्षण निर्धारित किए गए थे, लेकिन उन परीक्षणों में अंतर केवल भाषा में था, न कि पदार्थ में। न्यायालय ने एक अधिक परिष्कृत परीक्षण निर्धारित किया कि किए गए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए और कार्य का कर्तव्य से ऐसा संबंध होना चाहिए कि अभियुक्त एक उचित, लेकिन दिखावा या काल्पनिक दावा नहीं कर सके कि उसने अपने कर्तव्य के प्रदर्शन के दौरान ऐसा किया। इसलिए, यह पता लगाना चाहिए कि क्या कार्य और आधिकारिक कर्तव्य इस तरह से परस्पर संबंधित हैं कि यह उचित रूप से माना जा सकता है कि यह आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन में किया गया था, हालांकि संभवतः स्थिति की जरूरतों और आवश्यकताओं से अधिक। प्रासंगिक अवलोकन इस प्रकार हैं:

> "17. संहिता की धारा 197 में आने वाले प्रासंगिक शब्दों के दायरे और अर्थ को सुनिश्चित करने के लिए विनिश्चयित मामलों में थोड़े भिन्न परीक्षण निर्धारित किए गए हैं; "कोई भी अपराध जो उसके द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए किया गया है"। लेकिन अंतर केवल भाषा में है, सार में नहीं। कथित रूप से किए गए अपराध का आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से कुछ लेना-देना होना चाहिए या किसी तरह से संबंधित होना चाहिए। धारा 197 के तहत मंजूरी का कोई सवाल

> नहीं उठ सकता है, जब तक कि शिकायत की गई कार्रवाई अपराध न हो; निर्धारित करने का एकमात्र बिंदु यह है कि क्या यह आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था। कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कार्य कर्तव्य के निर्वहन के लिए सख्ती से आवश्यक से अधिक है, क्योंकि यह प्रश्न केवल बाद के चरण में उठेगा जब मुकदमा गुण-दोष के आधार पर आगे बढ़ेगा। हमें यह पता लगाना चाहिए कि क्या कार्य और आधिकारिक कर्तव्य इस तरह से परस्पर संबंधित हैं कि कोई यह तर्कसंगत रूप से मान सकता है कि यह आधिकारिक कर्तव्य के निष्पादन में अभियुक्त द्वारा किया गया था, हालांकि संभवतः स्थिति की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की अधिकता। ...
>
> xxx
>
> xxx
>
> xxx
>
> 19. उपर्युक्त चर्चा का परिणाम यह है: कृत्य और आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए; कृत्य का कर्तव्य से ऐसा संबंध होना चाहिए कि अभियुक्त एक उचित, लेकिन दिखावटी या काल्पनिक दावा नहीं कर सके कि उसने अपने कर्तव्य के पालन के दौरान ऐसा किया है।" (जोर दिया गया)

50. इसके अतिरिक्त, **धनंजय राम शर्मा बनाम एमएस उपपदया एवं अन्य मामले में एआईआर 1960 एससी 745 में** यह स्पष्ट किया गया था कि मात्र यह तथ्य कि अपराध करने का अवसर आधिकारिक कर्तव्य द्वारा प्रदान किया गया है, ऐसे कर्तव्य के निष्पादन के साथ अपराध का ऐसा संबंध नहीं है, जिससे यह दृष्टिकोण दूर से भी उचित ठहराया जा सके कि शिकायत किए गए कार्य धारा 197 सीआरपीसी के आवेदन के दायरे में हैं।

51. पी. अरुलस्वामी बनाम राज्य (1967) 1 एससीआर 201 में इस न्यायालय को भी धारा 409 आईपीसी के तहत अपराध से संबंधित माना गया था और यह माना गया था कि यह कार्य सीधे तौर पर लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्यों से संबंधित और जुड़ा होना चाहिए ताकि यह दावा किया जा सके कि यह उसके पद के आधार पर किया गया है। इसके अलावा, यह कार्य की "गुणवत्ता" है जिस पर जोर दिया जाना चाहिए। यह कार्य आधिकारिक कर्तव्य से पूरी तरह से असंबद्ध नहीं होना चाहिए। केवल तभी जब यह आधिकारिक कर्तव्यों के दायरे और सीमा के भीतर आता है, या उससे अधिक है, तो धारा 197 सीआरपीसी लागू होगी। न्यायालय ने इस प्रकार कहा था:

"...इसलिए यह जरूरी नहीं है कि लोक सेवक द्वारा किया गया हर अपराध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी की जरूरत हो; न ही उसके द्वारा किए गए हर कार्य के लिए, जब वह वास्तव में अपने आधिकारिक कर्तव्यों का पालन कर रहा हो; लेकिन अगर शिकायत की गई कार्रवाई सीधे उसके आधिकारिक कर्तव्यों से संबंधित है, ताकि अगर सवाल किया जाए, तो यह दावा किया जा सके कि यह उसके पद के कारण किया गया है, तो मंजूरी जरूरी होगी। यह कार्य की गुणवत्ता है जो महत्वपूर्ण है और अगर यह उसके आधिकारिक कर्तव्यों के दायरे और सीमा के भीतर आता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 द्वारा परिकल्पित सुरक्षा लागू होगी। कोई अपराध आधिकारिक कर्तव्य से पूरी तरह से असंबद्ध हो सकता है या यह आधिकारिक कर्तव्य के दायरे में किया जा सकता है। जहां यह आधिकारिक कर्तव्य से असंबद्ध है, वहां कोई सुरक्षा नहीं हो सकती। यह केवल तभी संभव है जब यह आधिकारिक कर्तव्य के दायरे में हो या उससे अधिक हो, तभी सुरक्षा का दावा किया जा सकता है..." (जोर दिया गया)

52. **हरिहर प्रसाद आदि बनाम बिहार राज्य (1972) 3 एससीसी 89 में रिपोर्ट की गई** कि अपीलकर्ताओं पर एक विकास परियोजना के लिए निर्धारित सरकारी धन की एक बड़ी राशि के संबंध में आपराधिक विश्वासघात और धोखाधड़ी के अपराध करने के लिए एक आपराधिक साजिश में शामिल होने का आरोप लगाया गया था। न्यायालय ने कहा कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत मंजूरी आवश्यक नहीं होगी क्योंकि यह एक सरकारी कर्मचारी के कर्तव्य का हिस्सा नहीं है कि वह अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते समय आपराधिक साजिश में शामिल हो या आपराधिक कदाचार में लिप्त हो और इस प्रकार टिप्पणी की:

"66. अगला मुद्दा सहमति या मंजूरी के बारे में था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बीपी सिन्हा के मामले में डिप्टी कमिश्नर ने उचित सहमति दी थी। इसलिए एनके बनर्जी और हरिहर प्रसाद के मामले में भी मुख्य सचिव ने सहमति दी थी। यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 196-ए के तहत मंजूरी या सहमति का मामला नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 की प्रयोज्यता के सवाल पर, दो मामलों में निर्धारित सिद्धांत, अर्थात्, **श्रीकांतिया रामय्या मुनिपल्ली बनाम बॉम्बे राज्य [एआईआर 1955 एससी 287]** और **अमरीक सिंह बनाम पेप्सू राज्य [एआईआर 1955 एससी 309]** इस प्रकार थे:

"किसी लोक सेवक द्वारा किए गए प्रत्येक अपराध के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के अंतर्गत अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती है; न ही उसके द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य के लिए, जब वह वास्तव में अपने पदीय कर्तव्यों का पालन कर रहा हो;

> लेकिन यदि शिकायत किया गया कार्य सीधे उसके पदीय कर्तव्यों से संबंधित है, जिससे पूछताछ किए जाने पर यह दावा किया जा सकता है कि यह कार्य उसके पद के आधार पर किया गया है, तो मंजूरी आवश्यक होगी।"

इसलिए असली सवाल यह है कि क्या वर्तमान मामले में जिन कृत्यों की शिकायत की गई है, वे तीनों लोक सेवकों के आधिकारिक कर्तव्यों से सीधे संबंधित थे। जहां तक दंड संहिता, 1860 की धारा 409 के साथ धारा 120-बी के तहत दंडनीय आपराधिक साजिश के अपराध और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(2) का सवाल है, उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 में वर्णित प्रकृति का नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में कहें तो, अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते समय किसी लोक सेवक का यह कर्तव्य नहीं है कि वह आपराधिक साजिश में शामिल हो या आपराधिक कदाचार में लिप्त हो। इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी की कमी कोई बाधा नहीं है।" (जोर दिया गया)

53. **बी. साहा और अन्य बनाम एमएस कोचर (1979) 4 एससीसी 177 में** , अपीलकर्ताओं पर धारा 409 और 120-बी आईपीसी के तहत अपराधों के लिए आरोप लगाए गए थे। न्यायालय ने कहा कि हालांकि यह कानून का अपरिवर्तनीय प्रस्ताव नहीं है कि आपराधिक दुर्विनियोजन या रूपांतरण का कार्य आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा नहीं हो सकता है, फिर भी वर्तमान मामले के तथ्यों में, आपराधिक दुर्विनियोजन के कथित कार्य को उचित रूप से कार्यालय के रंग से प्रभावित नहीं कहा जा सकता है या लोक सेवक के रूप में अपीलकर्ताओं के कर्तव्यों के साथ सीधा संबंध नहीं है। इसलिए, मंजूरी आवश्यक नहीं मानी गई। ऐसा करते हुए, न्यायालय ने कहा कि "अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का दावा करते हुए उनके द्वारा किए गए किसी भी अपराध" की न तो संकीर्ण रूप से और न ही व्यापक रूप से व्याख्या की जानी चाहिए और सही दृष्टिकोण दोनों चरम सीमाओं के बीच संतुलन बनाना होगा। इसलिए, इस धारा के लागू होने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि आरोपित अपराध, चाहे वह करने या न करने का हो, लोक सेवक द्वारा या तो अपनी आधिकारिक क्षमता में या अपने द्वारा धारित पद के रंग में किया जाना चाहिए, ताकि कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच सीधा या उचित संबंध हो। प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

> "17. संहिता की धारा 197(1) में प्रयुक्त शब्द "कोई अपराध जो उसके द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए किया गया है" संकीर्ण और व्यापक व्याख्या दोनों के लिए

सक्षम हैं। यदि इन शब्दों की व्याख्या बहुत संकीर्ण रूप से की जाती है, तो धारा पूरी तरह से निष्फल हो जाएगी, क्योंकि, "अपराध करना आधिकारिक कर्तव्य का हिस्सा नहीं है, और कभी नहीं हो सकता है"। व्यापक अर्थ में, ये शब्द अपराध का गठन करने वाले प्रत्येक कार्य को अपने अंतर्गत ले लेंगे, जो उसी लेनदेन के दौरान किया जाता है जिसमें आधिकारिक कर्तव्य का पालन किया जाता है या किया जाना अभिप्राय रखता है। इन शब्दों के आयात के लिए सही दृष्टिकोण इन दो चरम सीमाओं के बीच है। जबकि एक ओर, यह ऐसा प्रत्येक अपराध नहीं है जो किसी लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निष्पादन में लगे रहने के दौरान किया जाता है, जो धारा 197(1) के संरक्षण का हकदार है, एक अपराध का गठन करने वाला कार्य, जो सीधे और उचित रूप से उसके आधिकारिक कर्तव्य से जुड़ा हुआ है, उक्त प्रावधान के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता होगी। जैसा कि जस्टिस रामास्वामी ने **बैजनाथ बनाम मध्य प्रदेश राज्य [एआईआर 1966 एससी 220, 227: (1966) 1 एससीआर 210: 1966 क्रि एलजे 179]** में बताया है , "कार्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, और यदि यह उसके आधिकारिक कर्तव्यों के दायरे और सीमा के भीतर आता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 द्वारा परिकल्पित संरक्षण लागू होगा।"

18. संक्षेप में, इस धारा के लागू होने के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि आरोपित अपराध, चाहे वह करने का हो या न करने का, ऐसा होना चाहिए जो लोक सेवक द्वारा या तो अपनी आधिकारिक क्षमता में या अपने द्वारा धारित पद के रंग में किया गया हो।" (जोर दिया गया)

54. महाराष्ट्र राज्य बनाम डॉ. बुधिकोटा सुब्बाराव में इस न्यायालय ने (1993) 3 एससीसी 339 में रिपोर्ट दी कि धारा 197 सीआरपीसी के संकीर्ण और व्यापक निर्माण के बीच संतुलन कैसे बनाए रखा जा सकता है। न्यायालय ने कहा कि सेवा के दौरान किसी भी कार्य या चूक के लिए इसकी प्रयोज्यता निर्धारित करते समय धारा की सख्ती से व्याख्या की जानी चाहिए और इसका संचालन केवल उन कार्यों तक सीमित होना चाहिए जो "कर्तव्य के दौरान" किए जाते हैं। हालाँकि, एक बार जब कोई कार्य या चूक किसी लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में की गई पाई जाती है, तो जहाँ तक इसकी आधिकारिक प्रकृति का संबंध है, उस विशेष कार्य को उदार और व्यापक निर्माण दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक लोक सेवक अपने कर्तव्य के निर्वहन में आपराधिक गतिविधियों में लिप्त होने का हकदार नहीं है और उस सीमा तक, धारा की संकीर्ण और प्रतिबंधित तरीके से व्याख्या की जानी चाहिए। तथापि, एक बार यह स्थापित हो जाए कि कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय की गई थी, तो उसके "आधिकारिक" होने के

दायरे की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि धारा का उद्देश्य लोक सेवक के पक्ष में हो।

55. **आर. बालकृष्ण पिल्लई बनाम केरल राज्य और अन्य (1996) 1 एससीसी 478 में रिपोर्ट की गई** , अपीलकर्ता जो केरल राज्य के तत्कालीन बिजली मंत्री थे, पर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने केरल सरकार की सहमति के बिना कर्नाटक राज्य में एक उद्योग को बिजली बेचने के लिए आपराधिक साजिश रची थी। न्यायालय ने जोर देकर कहा कि कृत्य की गुणवत्ता पर ध्यान दिया जाना चाहिए और ऐसा कोई सामान्य प्रस्ताव नहीं हो सकता है कि जब भी किसी लोक सेवक के खिलाफ आपराधिक साजिश का आरोप लगाया जाता है, तो धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण लागू नहीं होगा। यह सवाल कि क्या शिकायत की गई कार्रवाई का आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन से सीधा संबंध था, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और इसे इस प्रकार कहा गया था:

> "6. ... यह प्रश्न कि क्या शिकायत किए गए कृत्यों का संबंधित लोक सेवक द्वारा आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन से कोई सीधा संबंध या सम्बन्ध था, प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। ऐसा कोई सामान्य प्रस्ताव नहीं हो सकता है कि जब भी किसी लोक सेवक के विरुद्ध कार्यालय में या बाहर आपराधिक षडयंत्र का आरोप लगाया जाता है, तो संहिता की धारा 197(1) के प्रतिबंध लागू नहीं होंगे। ऐसा दृष्टिकोण संहिता की धारा 197(1) को भ्रामक बना देगा। इसलिए, प्रत्येक मामले के तथ्यों में प्रश्न की जांच करनी होगी। ..." (जोर दिया गया)

56. **शंभू नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1997) 5 एससीसी 326 में रिपोर्ट की गई** , आरोपी लोक सेवक के खिलाफ रिकॉर्ड में हेराफेरी और सार्वजनिक धन के दुरुपयोग के आरोप लगाए गए थे। न्यायालय ने यह मानते हुए कि मामले के तथ्यों में मंजूरी आवश्यक नहीं थी, पुनः पुष्टि की कि लोक सेवक का कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्यों के पालन को आगे बढ़ाने के लिए होना चाहिए और केवल तभी जब कार्य या चूक सार्वजनिक कर्तव्य के पालन का अभिन्न अंग हो, तो वह धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण का हकदार होगा। ऐसा कहते हुए, न्यायालय ने प्रावधान के अधिनियमन के पीछे के उद्देश्य पर विस्तार से बताया और स्पष्ट किया कि मंजूरी का संरक्षण एक ईमानदार और निष्ठावान अधिकारी के लिए एक आश्वासन है ताकि वह अपने सार्वजनिक कर्तव्य को ईमानदारी से और अपनी सर्वोत्तम क्षमता के साथ निभा सके। अभियोजन की धमकी से उनका मनोबल गिर जाएगा और इसलिए, सक्षम प्राधिकारी या उपयुक्त सरकार द्वारा मंजूरी की आवश्यकता केवल ऐसे ईमानदार अधिकारियों के लिए एक ढाल के रूप में काम कर सकती है जो सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से अपना कर्तव्य

निभाते हैं। न्यायालय ने यह भी सही चेतावनी दी कि, हालांकि, इस तरह की छूट का उपयोग लोक सेवकों द्वारा सार्वजनिक पद की आड़ में अपराध को छिपाने के लिए नहीं किया जा सकता।

57. उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम गणेश चंद्र ज्यू (2004) 8 एससीसी 40 में इस न्यायालय के तर्क को कुछ अन्य ऐतिहासिक निर्णयों में भी अपनाया गया, जिनमें **एसके जुत्शी और अन्य बनाम बिमल देबनाथ और अन्य (2004) 8 एससीसी 31** और **के. कालीमुथु बनाम राज्य (2005) 4 एससीसी 512 शामिल हैं । गणेश चंद्र ज्यू** (सुप्रा) में न्यायालय ने "आधिकारिक कर्तव्य" की अभिव्यक्ति के दायरे पर विचार किया और कहा कि इस धारा का सुरक्षा कवच सेवा में लोक सेवक द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य या चूक तक विस्तारित नहीं होना चाहिए, बल्कि केवल उन कार्यों या चूक तक सीमित होना चाहिए जो लोक सेवक द्वारा अपने "आधिकारिक" कर्तव्य के निर्वहन में किए जाते हैं। "आधिकारिक" कर्तव्य के "कथित" अभ्यास में किए गए कार्यों या चूकों को भी संरक्षण प्रदान करके दायरे को और बढ़ाया जा सकता है, अर्थात, कार्यालय के रंग में, लेकिन इससे अधिक नहीं।

58. डॉ. अरिजीत पसायत, जे, ने आगे कहा कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत दी गई सुरक्षा को असीमित नहीं माना जाना चाहिए। इस सुरक्षा की कुछ सीमाएँ हैं और यह तभी उपलब्ध है जब कथित कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से उचित रूप से जुड़ा हो और न कि केवल आपत्तिजनक कार्य करने का एक आवरण हो। हालाँकि, यदि लोक सेवक ने अपने आधिकारिक कर्तव्य से अधिक कार्य किया है, लेकिन कार्य और उसके आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन के बीच एक उचित संबंध मौजूद है, तो यह अधिकता उसे धारा 197 सीआरपीसी के तहत सुरक्षा से वंचित करने का पर्याप्त आधार नहीं हो सकती है। इसलिए, यह दोहराया गया कि यह कार्य की "गुणवत्ता" है जो महत्वपूर्ण है और ऐसा कार्य लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्य के दायरे और सीमा के भीतर आना चाहिए। हालांकि यह निर्धारित करने के लिए कोई सार्वभौमिक नियम नहीं हो सकता है कि किए गए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच कोई उचित संबंध है या नहीं, इस संबंध में एक "सुरक्षित और सुनिश्चित परीक्षण" यह विचार करना होगा कि क्या लोक सेवक की ओर से शिकायत किए गए कार्य को करने में चूक या उपेक्षा उसे उसके आधिकारिक कर्तव्य की उपेक्षा के आरोप के लिए उत्तरदायी बना सकती है। यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो धारा 197 सीआरपीसी के तहत सुरक्षा प्रदान की जा सकती है क्योंकि शिकायत किए गए कार्य और लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्य के बीच हर संबंध था। प्रासंगिक अवलोकन इस प्रकार हैं:

> "7. इस संरक्षण की कुछ सीमाएँ हैं और यह तभी उपलब्ध है जब लोक सेवक द्वारा किया गया कथित कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से उचित

रूप से जुड़ा हुआ हो और वह आपत्तिजनक कार्य करने के लिए मात्र एक आवरण न हो। यदि अपने आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते हुए, उसने अपने कर्तव्य से अधिक कार्य किया, लेकिन कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन के बीच उचित संबंध है, तो यह अधिकता लोक सेवक को संरक्षण से वंचित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगी। प्रश्न अपराध की प्रकृति के बारे में नहीं है, जैसे कि क्या कथित अपराध में ऐसा तत्व शामिल था जो अपराधी के लोक सेवक होने पर अनिवार्य रूप से निर्भर था, बल्कि यह है कि क्या यह किसी लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक क्षमता के निर्वहन में कार्य करते हुए या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए किया गया था। धारा 197 को लागू करने से पहले, यह दिखाया जाना चाहिए कि संबंधित अधिकारी पर उस अपराध का आरोप लगाया गया था जो उसके द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करते हुए या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए किया गया था। कर्तव्य की नहीं बल्कि कृत्य की जांच की उतनी आवश्यकता है, क्योंकि आधिकारिक कृत्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में तथा उसके निर्वहन में दोनों ही स्थितियों में किया जा सकता है। कृत्य संबंधित लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्यों के दायरे तथा सीमा के अंतर्गत आना चाहिए। कृत्य की गुणवत्ता ही महत्वपूर्ण है तथा इस धारा का संरक्षण तभी उपलब्ध है, जब कृत्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे तथा सीमा के अंतर्गत आता हो। यह निर्धारित करने के लिए कोई सार्वभौमिक नियम नहीं हो सकता कि किए गए कृत्य तथा आधिकारिक कर्तव्य के बीच कोई उचित संबंध है या नहीं, न ही ऐसा कोई नियम निर्धारित करना संभव है। इस संबंध में एक सुरक्षित तथा सुनिश्चित परीक्षण यह विचार करना होगा कि क्या लोक सेवक द्वारा शिकायत किए गए कृत्य को करने में की गई चूक या उपेक्षा उसे उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही के आरोप के लिए उत्तरदायी बना सकती है। यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो यह कहा जा सकता है कि ऐसा कृत्य लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था तथा शिकायत किए गए कृत्य तथा लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्य के बीच हर तरह का संबंध था..." (जोर दिया गया)

59. **शंकरन मोइत्रा बनाम साधना दास और अन्य (2006) 4 एससीसी 584 में रिपोर्ट की गई** , अपीलकर्ता पुलिस अधिकारी पर चुनाव के दिन मतदान केंद्र के पास लाठीचार्ज करते समय शिकायतकर्ता के पति की हत्या का आरोप लगाया गया था। जबकि बेंच ने अपने बहुमत की राय में माना था कि अपीलकर्ता अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में काम कर रहा था, सीके ठक्कर, जे ने अपने अल्पमत की राय में कहा था कि जिस कृत्य की शिकायत की गई थी उसका ऐसे लोक सेवक के आधिकारिक कार्य या कर्तव्य से कोई संबंध, उचित संबंध या

प्रासंगिकता नहीं थी और अन्यथा, यह अवैध, गैरकानूनी और अत्याचारी था। उन्होंने आगे कहा कि यह न केवल अदालत की "शक्ति" है बल्कि उसके सामने मौजूद तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करना उसका "कर्तव्य" भी है। न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि एक ओर, यदि मामला धारा 197 सीआरपीसी के अंतर्गत आता है तो लोक सेवक को संरक्षण मिले और दूसरी ओर, यदि प्रावधान लागू नहीं होता है और अभियुक्त लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति की आड़ में धारा का अनुचित लाभ उठाने का प्रयास कर रहा है तो उचित कार्रवाई की अनुमति दी जाए। प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

> "67. उपर्युक्त निर्णयों से, मेरी राय में, कानून अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होता है। संहिता की धारा 197 के पीछे विधायिका का प्राथमिक उद्देश्य उन सार्वजनिक अधिकारियों की सुरक्षा करना है जिन्होंने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य किया है या ऐसे कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने का दावा किया है। लेकिन, यह भी समान रूप से स्थापित है कि किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा किए गए कथित कार्य का ऐसे सार्वजनिक अधिकारी द्वारा किए जाने वाले कर्तव्य से उचित संबंध होना चाहिए। यदि शिकायत किए गए कार्य का ऐसे लोक सेवक के आधिकारिक कार्य या कर्तव्य से कोई संबंध, उचित संबंध या प्रासंगिकता नहीं है और अन्यथा अवैध, गैरकानूनी या अपराध की प्रकृति का है, तो उसे संहिता की धारा 197 के तहत आश्रय नहीं मिल सकता है। दूसरे शब्दों में, उक्त धारा द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा योग्य और सशर्त है।
>
> 68. श्री तुलसी ने निःसंदेह कहा कि अपीलकर्ता एक पुलिस अधिकारी था। वह ड्यूटी पर था। उसे बेलियाघाटा में दंगे और कानून व्यवस्था की स्थिति के बारे में संदेश मिला था। इसलिए, वह उक्त संदेश के अनुसार पुलिस वर्दी में, पुलिस जीप में स्थिति से निपटने के लिए मौके पर गया था। इस प्रकार संहिता की धारा 197 के सभी तत्व संतुष्ट थे और उच्च न्यायालय द्वारा उक्त प्रावधान को लागू न करना गलत था।
>
> 69. मैं श्री तुलसी से सहमत नहीं हो पा रहा हूँ। मेरे निर्णय में, ऐसे मामलों में ही न्यायालय को यह विचार करना होता है कि क्या लोक सेवक अपने कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या करने का दावा कर रहा था या यह केवल लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति के बहाने अवैध कार्य करने का एक आवरण था और अपनी स्थिति का अनुचित लाभ उठाकर वह कोई अपराध या गैरकानूनी कार्य कर रहा था। ऐसी स्थितियों में, जब न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 197 की प्रयोज्यता या अन्यथा के बारे में प्रश्न विचारार्थ आता है, तो न्यायालय का न केवल अधिकार है, बल्कि कर्तव्य भी है कि वह अपने समक्ष तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करे। उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि एक ओर, यदि

मामला संहिता की धारा 197 के अंतर्गत आता है, तो लोक सेवक को संरक्षण मिले और दूसरी ओर, यदि प्रावधान लागू नहीं होता है और लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति की आड़ में वह अनुचित लाभ उठाने का प्रयास कर रहा है, तो उचित कार्रवाई की अनुमति दी जाए।" (जोर दिया गया)

60. **चौधरी परवीन सुल्ताना बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (2009) 3 एससीसी 398 में रिपोर्ट की गई कि** अपीलकर्ता के पति को गोलीबारी में गंभीर चोट लगी थी जिसके लिए मामला दर्ज किया गया था और पुलिस जांच की गई थी। अपीलकर्ता ने मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी कि प्रतिवादी संख्या 2 (जांच अधिकारी) और सह-आरोपी जांच करने के बहाने उसके घर आए, उसे और उसके पति को धमकाया और धमकी भरे हालात में एक खाली कागज पर उसके पति के हस्ताक्षर लेने की कोशिश की। जबकि मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया था, उच्च न्यायालय ने मंजूरी के अभाव में कार्यवाही को रद्द कर दिया था। ऐसी परिस्थितियों में, निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:

"18. इस न्यायालय द्वारा 1971 में **भगवान प्रसाद श्रीवास्तव मामले [(1970) 2 एससीसी 56: 1970 एससीसी (क्रि) 292: (1971) 1 एससीआर 317]** में दिया गया निर्देश आज भी सही है। एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के कथित निर्वहन में किए गए सभी कार्यों को स्वाभाविक रूप से धारा 197 सीआरपीसी के सुरक्षात्मक छत्र के तहत नहीं लाया जा सकता है। दूसरी ओर, एक लोक सेवक में निहित शक्तियों के दुरुपयोग और/या दुरुपयोग के मामले हो सकते हैं जिन्हें कभी भी उसके द्वारा किए जाने वाले आधिकारिक कर्तव्यों का हिस्सा नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि **भगवान प्रसाद श्रीवास्तव मामले [(1970) 2 एससीसी 56: 1970 एससीसी (क्रि) 292: (1971) 1 एससीआर 317]** में उल्लेख किया गया है , धारा 197 सीआरपीसी का अंतर्निहित उद्देश्य अधिकारियों को जांच करने में सक्षम बनाना है। किसी लोक सेवक के खिलाफ लगाए गए आरोप उसे तुच्छ, परेशान करने वाले या झूठे अभियोजन से बचाने के लिए लगाए जाते हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य उक्त अधिकारी को शर्मिंदा और परेशान करना होता है। हालाँकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यदि किसी लोक सेवक में निहित अधिकार का दुरुपयोग उन कार्यों के लिए किया जाता है, जिनकी कानून के तहत अन्यथा अनुमति नहीं है, तो ऐसे कार्य धारा 197 सीआरपीसी के संरक्षण का दावा नहीं कर सकते हैं और उन्हें उन कर्तव्यों से परे माना जाना चाहिए, जिनका निर्वहन या प्रदर्शन लोक सेवक से अपेक्षित है। इसलिए, ऐसे ज्यादतियों या अधिकार के दुरुपयोग के लिए अभियोजन के संबंध में, संबंधित लोक सेवक द्वारा किसी संरक्षण की मांग नहीं की जा सकती है।

> 19. वर्तमान मामले में, प्रतिवादी 2 और एक अन्य अभियुक्त पर कुछ ऐसे कार्य और कृत्य आरोपित किए गए हैं, जिनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रतिवादी 2 द्वारा किए जाने वाले आधिकारिक कर्तव्यों का हिस्सा थे। इसलिए, हमारे विचार में, प्रतिवादी 2 ऐसे कृत्यों के संबंध में धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण का हकदार नहीं था।" (जोर दिया गया)

न्यायालय ने यह कहते हुए कि प्रतिवादी संख्या 2 धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण का हकदार नहीं है, यह विचार किया कि यदि किसी लोक सेवक को दिए गए अधिकार का दुरुपयोग किया जाता है या ऐसे कार्य करने के लिए दुरुपयोग किया जाता है जो अन्यथा कानून के तहत अनुमत नहीं हैं, तो कोई व्यक्ति धारा 197 सीआरपीसी के तहत सहारा नहीं ले सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, किए गए कार्यों को उन कर्तव्यों से परे माना जाना चाहिए जिन्हें एक लोक सेवक को निर्वहन या प्रदर्शन करने की आवश्यकता होती है।

61. **उर्मिला देवी बनाम युद्धवीर सिंह (2013) 15 एससीसी 624 में रिपोर्ट की गई** , एम द्वारा शिकायत दर्ज की गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता और आर एक अवैध संबंध में रह रहे थे। इसलिए, प्रतिवादी उप-विभागीय मजिस्ट्रेट ने तहसीलदार को मामले की जांच करने का निर्देश दिया और संबंधित डीएसपी को एक विशेष जांच करने का भी निर्देश दिया। यह आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी ने अपीलकर्ता के घर की तलाशी लेने के लिए वीडियो कैमरों से लैस अपनी जांच टीम के साथ रात 10:00 बजे जबरन अपीलकर्ता के घर में प्रवेश किया था। यह भी आरोप लगाया गया था कि आर को अन्य अधिकारियों के सामने अपने कपड़े उतारने के लिए मजबूर किया गया था और अपीलकर्ता और आर दोनों को एक सिविल अस्पताल ले जाया गया था जहाँ उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध एक चिकित्सा परीक्षा से गुजरना पड़ा था। अपीलकर्ता की चिकित्सा जांच भी एक पुरुष चिकित्सक द्वारा की गई थी। इसके अलावा, यह भी आरोप लगाया गया था कि जब अपीलकर्ता और आर ने एम के खिलाफ शिकायत दर्ज की, तो प्रतिवादी ने उन्हें इसे वापस लेने की धमकी दी। न्यायालय ने कहा कि प्रतिवादी के खिलाफ आरोपित कोई भी कृत्य किसी भी तरह से कार्यकारी मजिस्ट्रेट के रूप में उसके द्वारा किया गया नहीं माना जा सकता। इसलिए, धारा 197 सीआरपीसी का प्रयोग पूरी तरह से अनुचित था। इस बात पर जोर देते हुए कि अभियुक्त के आधिकारिक कर्तव्य और उसके द्वारा कथित रूप से किए गए कृत्यों के बीच सीधे और उचित संबंध की जांच ही सही परीक्षा है, न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि सरकारी अधिकारी, आधिकारिक कर्तव्यों के कथित निर्वहन की आड़ में, शिकायत प्राप्त होने के बहाने नागरिकों को परेशान और अपमानित नहीं कर सकते। प्रासंगिक टिप्पणियां नीचे पुन: प्रस्तुत की गई हैं:

"63. अभियुक्त के आधिकारिक कर्तव्य और उनके द्वारा कथित रूप से किए गए कृत्यों के बीच प्रत्यक्ष और उचित संबंध का परीक्षण, इसलिए, यह तय करते समय लागू किया जाने वाला सही परीक्षण है कि क्या धारा 197 सीआरपीसी का संरक्षण किसी अपराध के आरोपी लोक सेवक को उपलब्ध है। उच्च न्यायालय ने इस परीक्षण पर ध्यान नहीं दिया है और न ही यह माना है कि आरोपी लोक सेवक द्वारा किए जा रहे आधिकारिक कर्तव्य और उसके द्वारा किए गए कृत्यों के बीच कोई सीधा और उचित संबंध मौजूद था। इसके विपरीत, उच्च न्यायालय ने खुद को गलत दिशा में निर्देशित किया है जब उसने कहा कि अभियुक्त ने केवल अपने आधिकारिक कर्तव्यों के प्रति चूक का कार्य किया था जिसके कारण वह संहिता की धारा 197 के संरक्षण का हकदार है।

65. यह समझना मुश्किल है कि उच्च न्यायालय का यह कहने का क्या मतलब था कि अभियुक्तों के कृत्य "अधिकतम आधिकारिक कर्तव्य के प्रति चूक के कृत्य" थे। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी का मामला नहीं था और न ही हमारे समक्ष उसका मामला है कि माया देवी द्वारा दायर की गई शिकायत में किसी ऐसे अपराध का खुलासा हुआ है जिसका संज्ञान कार्यकारी मजिस्ट्रेट के रूप में उनके द्वारा लिया जा सकता है या पुलिस द्वारा जांच की जा सकती है। यह मानते हुए कि शिकायतकर्ता और आरसी चोपड़ा तब भी साथ रह रहे थे जब वे एक-दूसरे से विवाहित नहीं थे, ऐसे किसी भी संबंध के बारे में शिकायत केवल आरसी चोपड़ा की पत्नी या शिकायतकर्ता उर्मिला देवी के पति द्वारा ही दायर की जा सकती है। माया देवी द्वारा दायर की गई शिकायत एसडीएम, तहसीलदार या संबंधित पुलिस उपाधीक्षक को शिकायतकर्ता के घर में जबरन घुसने, उसे अपमानित करने या परेशान करने या बिना किसी मामले के पंजीकरण के उसे पुलिस स्टेशन में घसीटने या उसे बिना किसी मेडिकल जांच के अधीन करने के लिए वैध आधार प्रदान नहीं कर सकी। प्रतिवादी उप-विभागीय मजिस्ट्रेट और संबंधित पुलिस अधिकारियों के आधिकारिक कर्तव्य और शिकायत किए गए कृत्यों के बीच सीधे और उचित संबंध का परीक्षण वर्तमान मामले में विफल हो जाता है, खासकर इसलिए क्योंकि प्रतिवादी की ओर से उसके द्वारा किए गए कार्य के लिए कोई कानूनी औचित्य भी नहीं मिलता है। पुलिस बल के साथ सूर्यास्त के बाद एक महिला के घर में प्रवेश करना, वीडियो कैमरा लेकर घर की अनुचित तलाशी लेना, शिकायतकर्ता को अपमानित करना और उसकी निजता का उल्लंघन करना, आरसी चोपड़ा को कपड़े उतारने के लिए कहकर उनका अपमान करना और उन दोनों को उनकी इच्छा के विरुद्ध चिकित्सा परीक्षण के लिए पुलिस स्टेशन ले जाना, खासकर जब पुरुष डॉक्टरों से शिकायतकर्ता की जांच करने के लिए कहा गया, जिसने चोट पर अपमान को और बढ़ा दिया, ये सभी किसी भी कानूनी औचित्य द्वारा समर्थित नहीं हैं और एक लोक सेवक के रूप में प्रतिवादी पर

डाले गए कर्तव्यों से कोई संबंध नहीं रखते इसलिए, प्रतिवादी के कथित कृत्यों को उसके पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में या ऐसे कर्तव्यों के कथित निर्वहन में नहीं कहा जा सकता।

66. सरकारी कर्मचारी अपने आधिकारिक कर्तव्यों के कथित निर्वहन की आड़ में नागरिकों को परेशान और अपमानित नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें शिकायत मिली है, खासकर तब जब शिकायत में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय या पुलिस द्वारा संज्ञेय किसी अपराध का खुलासा नहीं होता; न ही ऐसी कोई अन्य कार्यवाही हुई हो जिसके संबंध में ऐसा आचरण कानून में उचित ठहराया जा सके। इसलिए, प्रतिवादी की यह दलील कि अभियोजन को धारा 197 सीआरपीसी के तहत प्रतिबंधित किया गया था, खारिज की जानी चाहिए।" (जोर दिया गया)

62. **राजीब रंजन बनाम आर. विजयकुमार (2015) 1 एससीसी 513 में** , अपीलकर्ता सरकारी अधिकारियों के खिलाफ झूठे दस्तावेज बनाने की साजिश के लिए शिकायत दर्ज की गई थी। इस न्यायालय ने माना था कि आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते समय भी, यदि कोई सरकारी कर्मचारी आपराधिक साजिश में शामिल होता है या आपराधिक कदाचार में लिप्त होता है, तो धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण प्रदान करने के लिए ऐसे कदाचार को उसके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में एक कार्य के रूप में नहीं माना जाना चाहिए और इसे इस प्रकार विस्तृत किया जाना चाहिए:

"15. हालांकि, मंजूरी तब आवश्यक है जब लोक सेवक के खिलाफ आरोपित अपराध उसके द्वारा "अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का प्रकल्पना करते हुए" किया गया हो। यह पता लगाने के लिए कि क्या कथित अपराध उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का प्रकल्पना करते हुए किया गया है, इस न्यायालय द्वारा बुद्धिकोटा सुब्बाराव [**महाराष्ट्र राज्य बनाम बुद्धिकोटा सुब्बाराव, (1993) 3 एससीसी 339: 1993 एससीसी (क्रि) 901: (1993) 2 एससीआर 311**] में निम्नलिखित शब्दों में निम्नलिखित मानदंड प्रदान किए गए हैं: (एससीसी पृष्ठ 347, पैरा 6)

> "6. ... इसलिए, यदि तथ्यों के आधार पर प्रथम दृष्टया यह पाया जाता है कि जिस कार्य या चूक के लिए अभियुक्त पर आरोप लगाया गया था उसका उसके कर्तव्य के निर्वहन के साथ उचित संबंध था, तो इसे आधिकारिक माना जाना चाहिए, जिसके लिए संहिता की धारा 197 की प्रयोज्यता पर विवाद नहीं किया जा सकता है।"

16. इस सिद्धांत को **रघुनाथ अनंत गोविलकर बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2008) 11 एससीसी 289: (2009) 1 एससीसी (सीआरआइ) 130]** में कुछ अधिक विस्तार से समझाया गया था , जिसे इस न्यायालय ने एसएलपी (सीआरआइ) संख्या 5453/2007 में 8-2-2008 को निम्नलिखित तरीके से तय किया था: (एससीसी पृ. 29899, पैरा 11)

> "11. 7. . "66. . दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 की प्रयोज्यता के प्रश्न पर, दो मामलों अर्थात् **श्रीकान्तिया रामय्या मुनिपल्ली बनाम बॉम्बे राज्य [एआईआर 1955 एससी 287: 1955 क्रि एलजे 857]** और **अमरीक सिंह बनाम पेप्सू राज्य [एआईआर 1955 एससी 309: 1955 क्रि एलजे 865]** में निर्धारित सिद्धांत इस प्रकार था: (**अमरीक सिंह मामला** [एआईआर 1955 एससी 309: 1955 क्रि एलजे 865], एआईआर पृष्ठ 312, पैरा 8)
>
> 8. किसी लोक सेवक द्वारा किए गए प्रत्येक अपराध के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) के अंतर्गत अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती है; यहां तक कि उसके द्वारा अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान किए गए प्रत्येक कार्य के लिए भी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होती है; लेकिन यदि शिकायत किया गया कार्य सीधे उसके पदीय कर्तव्यों से संबंधित है, जिससे पूछताछ किए जाने पर यह दावा किया जा सकता है कि यह कार्य उसके पद के आधार पर किया गया है, तो मंजूरी आवश्यक होगी।
>
> इसलिए असली सवाल यह है कि क्या वर्तमान मामले में जिन कृत्यों की शिकायत की गई है, वे तीनों लोक सेवकों के आधिकारिक कर्तव्यों से सीधे संबंधित थे। जहां तक दंड संहिता की धारा 409 के साथ धारा 120-बी के तहत दंडनीय आपराधिक साजिश के अपराध और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(2) का सवाल है, तो उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 में वर्णित प्रकृति का नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में कहें तो, अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते समय किसी लोक सेवक का यह कर्तव्य नहीं है कि वह आपराधिक साजिश में शामिल हो या आपराधिक कदाचार में लिप्त हो। इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी की कमी कोई बाधा नहीं है।" [संपादक: जैसा कि **हरिहर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1972) 3 एससीसी 89** , 115, पैरा 66: 1972 एससीसी (क्रि) 409 में देखा गया है।] ' [संपादक: **केरल राज्य बनाम वी. पद्मनाभन नायर, (1999) 5 एससीसी 690** , 692, पैरा 7: 1999 एससीसी (क्रि) 1031 से उद्धृत।] "

17. इसी तरह, **शंभू नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1997) 5 एससीसी 326: 1997 एससीसी (क्रि) 676: एआईआर 1997 एससी 2102]** में , न्यायालय ने इस विषय पर निम्नलिखित तरीके से विचार किया: (एससीसी पृष्ठ 328, पैरा 5)

> "5. सवाल यह है कि जब लोक सेवक पर रिकॉर्ड बनाने या सार्वजनिक निधि के दुरुपयोग आदि का अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि उसने अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में ऐसा किया है? अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में या उन्हें आगे बढ़ाने के लिए झूठे रिकॉर्ड बनाना और सार्वजनिक निधि आदि का दुरुपयोग करना लोक सेवक का आधिकारिक कर्तव्य नहीं है। आधिकारिक क्षमता ही उसे रिकॉर्ड बनाने या सार्वजनिक निधि आदि का दुरुपयोग करने में सक्षम बनाती है। इसका मतलब यह नहीं है कि यह उसी लेनदेन के दौरान किए गए अपराध से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है या अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, जैसा कि विद्वान न्यायाधीश ने माना था। इन परिस्थितियों में, हम इस राय के हैं कि मंजूरी के सवाल पर उच्च न्यायालय के साथ-साथ ट्रायल कोर्ट द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अवैध है और इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है।"

18. उपरोक्त मामलों का अनुपात, जो स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, यह है कि अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते समय भी, यदि कोई लोक सेवक किसी आपराधिक साजिश में शामिल होता है या आपराधिक कदाचार में लिप्त होता है, तो उसकी ओर से इस तरह के कदाचार को उसके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में किया गया कार्य नहीं माना जाना चाहिए और इसलिए, संहिता की धारा 197 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। वास्तव में, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिकाओं को ठीक इन टिप्पणियों के साथ खारिज कर दिया है, अर्थात्, आरोप झूठे रिकॉर्ड गढ़ने से संबंधित हैं जिन्हें अपीलकर्ता के सामान्य आधिकारिक कर्तव्यों के हिस्से के रूप में नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने कानून के प्रस्ताव को सही ढंग से स्पष्ट किया है। एकमात्र सवाल यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों पर इसे सही ढंग से लागू किया गया है।" (जोर दिया गया)

63. धारा 197 सीआरपीसी के अधिनियमन के पीछे का उद्देश्य भ्रष्ट अधिकारियों को बचाना नहीं होना चाहिए और यही स्थिति **पुलिस निरीक्षक और अन्य बनाम बट्टेनापटला वेंकट रत्नम और अन्य (2015) 13 एससीसी 87 में दर्ज की गई थी** । यहां, आंध्र प्रदेश राज्य के विभिन्न कार्यालयों में उप-पंजीयक के रूप में काम करते हुए प्रतिवादियों ने रजिस्टरों में हेरफेर करने के लिए स्टांप विक्रेताओं, दस्तावेज़

लेखकों और अन्य कर्मचारियों के साथ साजिश रची थी और संबंधित संपत्तियों के पुराने मूल्य के साथ दस्तावेजों को पंजीकृत करवाया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें गलत लाभ हुआ और सरकार को नुकसान हुआ। ऐसे कृत्यों को उनके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के अनुरूप नहीं माना गया। की गई टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> "11. धोखाधड़ी, रिकॉर्ड में हेराफेरी या गबन में अधिकारियों की कथित संलिप्तता को उनके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में नहीं कहा जा सकता। उनका आधिकारिक कर्तव्य रिकॉर्ड में हेराफेरी करना या शुल्क के भुगतान से बचने की अनुमति देना और राजस्व को नुकसान पहुंचाना नहीं है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने इन महत्वपूर्ण पहलुओं को अनदेखा कर दिया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने सही ढंग से यह विचार किया है कि यदि मंजूरी के उक्त दृष्टिकोण पर विचार किया जाना है, तो यह केवल परीक्षण के चरण में ही किया जा सकता है।" (जोर दिया गया)

64. इस न्यायालय को **सुरिंदरजीत सिंह मंड और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2016) 8 एससीसी 722 में** एक तथ्यात्मक परिदृश्य का सामना करना पड़ा, जिसमें एक आरोपी को कथित तौर पर चोरी के मामले में अपीलकर्ता पुलिस अधिकारियों द्वारा 24.06.1999 को गिरफ्तार किया गया था, लेकिन औपचारिक रूप से और आधिकारिक तौर पर उसे 28.06.1999 को ही गिरफ्तार किया गया दिखाया गया था। 24.06.1999 से 28.06.1999 की अवधि के लिए आरोपी की कथित अवैध हिरासत के संबंध में आरोपी की मां के कहने पर दर्ज एफआईआर के आधार पर अपीलकर्ता अधिकारियों के खिलाफ अभियोजन शुरू किया गया था। यह मानते हुए कि अवैध हिरासत की परिस्थितियों में मुकदमा चलाने के लिए किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है, इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:

> "23. प्रतिवादियों के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत तर्क पर विचार करने के पश्चात, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस न्यायालय द्वारा पीपी उन्नीकृष्णन मामले [**पीपी उन्नीकृष्णन बनाम पुट्टियोट्टिल अलीकुट्टी, (2000) 8 एससीसी 131: 2000 एससीसी (सीआरआइ) 1460**] में दिया गया निर्णय स्पष्ट और सशक्त है। इसमें कोई विकल्प चुनने की गुंजाइश नहीं है। यह स्पष्ट है कि संहिता के प्रावधानों के अनुसार, ऊपर उल्लिखित नीरज कुमार की आधिकारिक गिरफ्तारी 28-6-1999 से 30-6-1999 तक की अवधि के दौरान विस्तारित होगी। गिरफ्तारी की उपरोक्त अवधि को वैध रूप से "अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का दावा करते समय" माना जा सकता है। अपीलकर्ताओं द्वारा व्यक्त तथ्यात्मक स्थिति यह है कि नीरज कुमार को 24-6-1999 से 30-6-1999 तक की अवधि के लिए हिरासत में

नहीं लिया गया था। 28-6-1999. यदि यह सच है, तो हमारे विचार से, उपरोक्त अवधि के दौरान उनकी हिरासत निश्चित रूप से अभियुक्तों द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करने का दावा करने की कार्रवाई से उभर कर नहीं आती है। यदि यह ट्रायल कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से उभर कर आता है कि नीरज कुमार को वास्तव में 24-6-1999 से 28-6-1999 की अवधि के दौरान हिरासत में लिया गया था, तो उक्त हिरासत को अभियुक्तों द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करने का दावा करने के दौरान की गई हिरासत नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा, क्योंकि यह अपीलकर्ताओं का मामला नहीं है कि उन्होंने 24-6-1999 से 28-6-1999 की अवधि के दौरान नीरज कुमार को जेल में रखा था। यदि उन्होंने उपरोक्त अवधि के दौरान उन्हें हिरासत में नहीं लिया था, तो किसी के लिए यह स्थिति मान लेना खुला नहीं है कि उपरोक्त अवधि के दौरान नीरज कुमार की हिरासत उनके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करने का दावा करने के दौरान थी। इसलिए, इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, पीपी उन्नीकृष्णन मामले [**पीपी उन्नीकृष्णन बनाम पुट्टियोट्टिल अलिकुट्टी, (2000) 8 एससीसी131: 2000 एससीसी (सीआरआई) 1460**] में इस न्यायालय द्वारा घोषित कानूनी स्थिति के आधार पर, हमारा यह सुविचारित मत है कि 24-6-1999 से 28-6-1999 की अवधि के लिए नीरज कुमार की हिरासत के संबंध में अभियुक्त के अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी, इससे पहले कि सक्षम न्यायालय द्वारा नीरज कुमार की कथित गिरफ्तारी के संदर्भ में संज्ञान लिया जाए। इसलिए हम उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त प्रभाव के लिए निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन करते हैं।" (जोर दिया गया)

65. इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित सभी निर्णयों के अवलोकन से जो कानूनी स्थिति उभर कर आती है, वह यह है कि एक ऐसा सार्वभौमिक नियम बनाना संभव नहीं है जिसे उन विविध तथ्यों और परिस्थितियों पर समान रूप से लागू किया जा सके जिनके संदर्भ में धारा 197 सीआरपीसी के तहत सुरक्षा मांगी गई है। इस तरह के समरूप मानक को निर्धारित करने का कोई भी प्रयास इस प्रावधान के आवेदन के दायरे के संबंध में अनावश्यक कठोरता पैदा करेगा। इस संदर्भ में, कानून की स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: -

(i) धारा 197 सीआरपीसी के अधिनियमन के पीछे का उद्देश्य जिम्मेदार लोक सेवकों को उनके द्वारा अपने आधिकारिक पद पर कार्य करते समय या कार्य करने का दावा करते समय किए गए अपराधों के लिए संभावित रूप से झूठे या परेशान करने वाले आपराधिक कार्यवाही की स्थापना के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करना है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि लोक सेवकों पर उनके

द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए किसी भी कार्य के लिए बिना किसी उचित कारण के मुकदमा न चलाया जाए। यह प्रावधान ईमानदार और निष्ठावान अधिकारियों के लिए एक आश्वासन के रूप में है ताकि वे बिना किसी मनोबल के अपने सार्वजनिक कर्तव्यों का ईमानदारी से, अपनी क्षमता के अनुसार और सार्वजनिक हित को आगे बढ़ाते हुए पालन कर सकें।

(ii) धारा 197 सीआरपीसी में "अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए उसके द्वारा किया गया कोई भी अपराध" अभिव्यक्ति को न तो संकीर्ण रूप से और न ही व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए और सही दृष्टिकोण दोनों चरम सीमाओं के बीच संतुलन बनाना होगा। धारा को इस हद तक सख्ती से समझा जाना चाहिए कि इसका संचालन केवल उन कार्यों तक सीमित हो जो "कर्तव्य के दौरान" किए जाते हैं। हालाँकि, एक बार यह पता चल गया है कि कार्य या चूक वास्तव में लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में की गई है, फिर किसी विशेष कार्य या चूक को उसके "आधिकारिक" स्वरूप के संबंध में उदार और व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए।

(iii) यह आवश्यक है कि न्यायालय धारा 197 सीआरपीसी की प्रयोज्यता के प्रश्न पर विचार करते समय अपने समक्ष तथ्यात्मक स्थिति पर पूरी तरह से विचार करे। ऐसा इस तरह से किया जाना चाहिए कि दोनों पहलुओं का ध्यान रखा जाए, अर्थात, एक तरफ, यदि शिकायत की गई कार्रवाई उसके आधिकारिक कर्तव्य के अंतर्गत आती है तो धारा 197 सीआरपीसी के तहत लोक सेवक को संरक्षण दिया जाए और दूसरी तरफ, यदि शिकायत की गई कार्रवाई लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में नहीं की गई है या किए जाने का दावा नहीं किया गया है तो उचित कार्रवाई की अनुमति दी जाए।

(iv) किसी लोक सेवक को अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करने का अभिप्राय तभी कहा जा सकता है, जब उसका कार्य ऐसा हो जो उसके आधिकारिक कर्तव्यों के दायरे और सीमा के भीतर हो। धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से शिकायत किए गए कार्य को लोक सेवक के रूप में उसके कर्तव्यों से अभिन्न रूप से जुड़ा या सीधे तौर पर जुड़ा होना चाहिए। इसलिए, यह कर्तव्य नहीं है जिसकी जांच की उतनी आवश्यकता है जितनी कि "कार्य" की।

(v) इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण परीक्षण यह था कि क्या लोक सेवक को चुनौती दिए जाने पर वह यह दावा कर सकता है कि वह जो कुछ कर रहा है,

वह अपने पद के आधार पर कर रहा है।

(vi) बाद में, परीक्षण को फिर से संशोधित किया गया। यह निर्धारित किया गया कि किए गए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए और कार्य का कर्तव्य से ऐसा संबंध होना चाहिए जिससे अभियुक्त एक उचित, लेकिन दिखावटी या काल्पनिक दावा न कर सके कि उसके कार्य उसके कर्तव्य के पालन के दौरान थे। इसलिए, इस धारा की प्रयोज्यता के लिए अनिवार्य शर्त यह है कि आरोपित अपराध, चाहे वह करने का हो या चूक का, लोक सेवक द्वारा या तो अपनी आधिकारिक क्षमता में या उसके द्वारा धारित पद के रंग में किया जाना चाहिए ताकि कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच एक सीधा या उचित संबंध हो।

(vii) यदि अपने पदीय कर्तव्य का पालन करते हुए लोक सेवक अपने कर्तव्य से अधिक कार्य करता है, तो यह अधिकता अपने आप में धारा 197 सीआरपीसी के तहत लोक सेवक को संरक्षण से वंचित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगी, यदि यह पाया जाता है कि किए गए कार्य और उसके पदीय कर्तव्य के पालन के बीच उचित संबंध मौजूद था।

(viii) कार्य की "गुणवत्ता" की जांच की जानी चाहिए और केवल यह तथ्य कि आधिकारिक पद द्वारा अपराध करने का अवसर प्रदान किया गया है, धारा 197 सीआरपीसी को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

(ix) विधानमंडल ने दो अलग-अलग अभिव्यक्तियों "कार्य करना" या "कार्य करने का अभिप्राय" का उपयोग करना उचित समझा है। उत्तरार्द्ध अभिव्यक्ति का अर्थ है कि भले ही कथित कार्य पद के रंग में किया गया हो, धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण दिया जा सकता है। हालाँकि, इस संरक्षण को अत्यधिक नहीं बढ़ाया जाना चाहिए और इसे असीमित नहीं माना जाना चाहिए। इसे केवल तभी उपलब्ध कराया जाना चाहिए जब कथित कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से उचित रूप से जुड़ा हो और आपत्तिजनक कार्य करने के लिए मात्र एक आवरण न हो।

(x) यह निर्धारित करने के लिए कोई सार्वभौमिक नियम नहीं हो सकता है कि किए गए कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के बीच कोई उचित संबंध है या नहीं, न ही ऐसा कोई नियम निर्धारित करना संभव है। हालाँकि, एक "सुरक्षित और सुनिश्चित परीक्षण" यह विचार करना होगा कि क्या लोक सेवक की ओर से शिकायत किए गए कार्य को करने में चूक या उपेक्षा ने उसे अपने आधिकारिक कर्तव्य की उपेक्षा के आरोप के लिए उत्तरदायी बनाया होगा। यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो धारा 197 सीआरपीसी के तहत सुरक्षा प्रदान की जा

सकती है क्योंकि शिकायत किए गए कार्य और लोक सेवक के आधिकारिक कर्तव्य के बीच हर तरह का संबंध था।

(xi) इस प्रावधान का दुरुपयोग लोक सेवकों द्वारा किसी अपराध को सार्वजनिक पद के कथित रंग में छिपाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रावधान का लाभ उन लोक अधिकारियों को नहीं दिया जाना चाहिए जो अपने पद का अनुचित लाभ उठाने की कोशिश करते हैं और अपने पास निहित अधिकार का दुरुपयोग करके ऐसे कार्य करते हैं जिनकी कानून में अन्यथा अनुमति नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में, किए गए कार्यों को उन कर्तव्यों से परे माना जाना चाहिए जिन्हें एक लोक सेवक को निर्वहन या निष्पादित करने की आवश्यकता होती है।

(xii) उपर्युक्त परीक्षणों के आवेदन पर, यदि तथ्यों के आधार पर, प्रथम दृष्टया यह पाया जाता है कि जिस कार्य या चूक के लिए अभियुक्त पर आरोप लगाया गया है उसका उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के साथ उचित संबंध है, तो धारा 197 सीआरपीसी की प्रयोज्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है।

66. दोहराव की कीमत पर, हम कहते हैं कि धारा 197 सीआरपीसी के आवेदन पर कानून की स्थिति स्पष्ट है - कि इसे प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने कई निर्णयों में माना है कि किसी लोक सेवक द्वारा शक्तियों का दुरुपयोग या दुरुपयोग करके कुछ ऐसा करना जो कानून में अस्वीकार्य है जैसे कि किसी को पढ़ा-लिखा बयान देने की धमकी देना या खाली कागज पर हस्ताक्षर प्राप्त करने का प्रयास करना; किसी आरोपी को अवैध रूप से हिरासत में लेना; झूठे या मनगढ़ंत दस्तावेज बनाने के लिए आपराधिक साजिश में शामिल होना; व्यक्तियों को परेशान करने और धमकाने के एकमात्र उद्देश्य से तलाशी लेना, आदि धारा 197 सीआरपीसी के सुरक्षात्मक छत्र के अंतर्गत नहीं आते हैं।

67. इसके आलोक में, यह निष्कर्ष निकलता है कि जब किसी पुलिस अधिकारी पर झूठा मामला दर्ज करने का आरोप लगाया जाता है, तो वह यह दावा नहीं कर सकता कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता थी, क्योंकि फर्जी मामला दर्ज करना और उससे संबंधित साक्ष्य या दस्तावेज गढ़ना किसी सरकारी अधिकारी के आधिकारिक कर्तव्य का हिस्सा नहीं हो सकता। कृत्य की गुणवत्ता की जांच करने पर, यह स्पष्ट है कि इस तरह के कृत्य और सरकारी कर्मचारी को सौंपे गए कर्तव्यों के बीच कोई उचित या तर्कसंगत संबंध नहीं है, यह दावा करने के लिए कि यह उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था या किए जाने का दावा किया गया था। केवल यह तथ्य कि आधिकारिक कर्तव्य द्वारा झूठा मामला दर्ज करने का अवसर प्रदान किया गया था, निश्चित रूप से धारा 197

सीआरपीसी को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। ऐसा करने की अनुमति देने से, अभियुक्तों को आपत्तिजनक, अवैध और गैरकानूनी कार्य करने के लिए सरकारी कर्मचारी के रूप में अपनी स्थिति का उपयोग करने और अपने पद का अनुचित लाभ उठाने में सक्षम बनाया जाएगा। 3, 4 और 5 क्रमशः एक झूठा मामला था, फिर इसमें कोई संदेह नहीं है कि मंजूरी देने से इनकार करना उनके अभियोजन के लिए बाधा के रूप में कार्य नहीं करेगा। इसके अलावा, जहां तक प्रतिवादी नंबर 1 के मामले का संबंध है, यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जब उक्त झूठा मामला दर्ज किया गया था, तब वह मुरार पुलिस स्टेशन में एसएचओ या टीआई के रूप में भी तैनात नहीं था। यह उच्च न्यायालय के समक्ष फिरोजाबाद में आईओ द्वारा प्रस्तुत हलफनामे से भी स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी नंबर 1 ने हमारे सामने अपने प्रस्तुतीकरण में स्वयं स्वीकार किया है कि वह वास्तव में जिला शिवपुरी में तैनात था, जो प्रासंगिक समय के दौरान ग्वालियर से 120 किलोमीटर दूर है। इसलिए, वर्तमान मामले में प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा किए गए किसी भी कृत्य या अपराध को सुरक्षित रूप से उसके आधिकारिक कर्तव्य के दायरे से बाहर कहा जा सकता है

68. उपर्युक्त बातों के बाद, यह प्रश्न कि क्या अनुमति की आवश्यकता है या नहीं, कार्यवाही के किसी भी चरण में उठ सकता है। ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जहाँ शिकायत या पुलिस रिपोर्ट में यह खुलासा न हो कि अपराध का गठन करने वाला कार्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था या किए जाने का इरादा था। हालाँकि, बाद में सामने आने वाले तथ्य अनुमति की आवश्यकता को स्थापित कर सकते हैं। मामले की प्रगति के दौरान भी अनुमति की आवश्यकता स्वयं प्रकट हो सकती है जैसा कि **माताजोग** (सुप्रा) में इस प्रकार बताया गया है:

> "20. क्या शिकायत दर्ज होते ही और उसमें निहित आरोपों पर मंजूरी की आवश्यकता पर विचार किया जाना चाहिए? पहली नज़र में, ऐसा लगता है कि **होरी राम मामले [(1939) एफसीआर 159** , 178] और **सरजू प्रसाद बनाम किंग-एम्परर [(1945) एफसीआर 227] में इस दृष्टिकोण के लिए कुछ समर्थन है।** सुलेमान, जे. कहते हैं कि चूंकि निषेध संस्था के विरुद्ध है, इसलिए इसकी प्रयोज्यता का निर्णय संस्था के आरंभिक चरण में ही किया जाना चाहिए। वरदाचारीर, जे. यह भी कहते हैं कि आपराधिक कार्यवाही में लोक सेवक के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की प्रकृति के संदर्भ में प्रश्न का निर्धारण किया जाना चाहिए। लेकिन उनके निर्णयों के बाद के भागों का सावधानीपूर्वक अवलोकन करने से पता चलता है कि उनका ऐसा कोई प्रस्ताव रखने का इरादा नहीं था। सुलेमान, जे. (पी-179 पर) अभियोजन पक्ष के मामले का उल्लेख करते हैं जैसा कि शिकायत या पुलिस रिपोर्ट द्वारा प्रकट किया गया है और वे इन शब्दों में चर्चा समाप्त करते हैं: "बेशक, अगर यदि प्रस्तुत मामला विफल हो जाता है या बचाव पक्ष यह स्थापित कर देता है कि कथित कार्य

> कर्तव्य के निष्पादन में किया गया है, तो कार्यवाही को समाप्त करना होगा और उस आधार पर शिकायत को खारिज करना होगा"। दूसरे विद्वान न्यायाधीश ने भी पृष्ठ 185 पर कहा है, "इस स्तर पर हमें केवल यह देखना है कि अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोपित या उसके विरुद्ध सिद्ध किया जाने वाला मामला उसके द्वारा अपने कर्तव्य के निष्पादन में किए गए या किए जाने का प्रकल्पित कार्यों से संबंधित है या नहीं"। ऐसा होना ही चाहिए। यह प्रश्न कार्यवाही के किसी भी चरण में उठ सकता है। शिकायत से यह पता नहीं चल सकता है कि अपराध का गठन करने वाला कार्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था या किए जाने का प्रकल्पित था; लेकिन बाद में पुलिस या न्यायिक जांच या यहां तक कि मुकदमे में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के दौरान प्रकाश में आने वाले तथ्य, मंजूरी की आवश्यकता को स्थापित कर सकते हैं। मंजूरी आवश्यक है या नहीं, इसका निर्धारण चरण दर चरण करना होगा। मामले की प्रगति के दौरान इसकी आवश्यकता स्वयं ही सामने आ सकती है।" (जोर दिया गया)

69. **पुखराज बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (1973) 2 एससीसी 701 में रिपोर्ट की गई** , दूसरे प्रतिवादी पर अपने क्लर्क के साथ दुर्व्यवहार करने और उसे लात मारने का आरोप लगाया गया था, जो उसका अधीनस्थ था और उस पर धारा 323 और 504 आईपीसी के तहत आरोप लगाया गया था। न्यायालय ने कहा कि इस तरह के कृत्य को उसके कर्तव्य के कथित अभ्यास में नहीं कहा जा सकता है और माना कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत मंजूरी आवश्यक नहीं थी। हालांकि, यह भी देखा गया कि मामले की प्रगति के दौरान मंजूरी की आवश्यकता स्वयं प्रकट हो सकती है और यह अभियुक्त के लिए खुला होगा कि वह मुकदमे के दौरान रिकॉर्ड पर सामग्री रखे ताकि यह दिखाया जा सके कि उसका कर्तव्य क्या था और यह भी कि जिन कृत्यों की शिकायत की गई थी, वे उसके कर्तव्य से इतने जुड़े हुए थे कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत उसे संरक्षण दिया जाना चाहिए। यह इस प्रकार देखा गया:

> "3. हमें यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि यह मामला यहीं समाप्त नहीं होता। जैसा कि **सरजू प्रसाद बनाम किंग-एम्परर [एआईआर 1946 एफसी 25: 1954 एफसीआर 227: 47 क्रि एलजे 838]** में बताया गया था , जिसमें होरी राम सिंह मामले में सुलेमान, जे. की टिप्पणियों का उल्लेख किया गया था कि केवल तथ्य यह है कि अभियुक्त ने कर्तव्य के निष्पादन में किए गए कृत्य का बचाव करने का प्रस्ताव रखा है, जो अपने आप में मंजूरी के अभाव में मामले को खारिज करने का औचित्य साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इस स्तर पर हमें केवल यह देखना है कि क्या दूसरे प्रतिवादी के खिलाफ आरोपित कृत्यों को उसके कर्तव्य के निष्पादन में किया गया माना जा सकता है। लेकिन न्यायिक जांच के दौरान या मुकदमे में अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के दौरान

> सामने आने वाले तथ्य मंजूरी की आवश्यकता को स्थापित कर सकते हैं। मंजूरी आवश्यक है या नहीं, यह चरण दर चरण निर्भर हो सकता है। मामले की प्रगति के दौरान इसकी आवश्यकता स्वयं प्रकट हो सकती है [**माताजोग में टिप्पणियां देखें डोबे बनाम एचसी भारी] भगवान प्रसाद श्रीवास्तव बनाम एनपी मिश्रा** में भी यह इंगित किया गया था कि अपीलकर्ता (इस मामले में दूसरा प्रतिवादी) के लिए यह स्वतंत्र होगा कि वह मुकदमे के दौरान रिकॉर्ड पर सामग्री रखे ताकि यह दिखाया जा सके कि उसका कर्तव्य क्या था और यह भी कि जिन कृत्यों की शिकायत की गई है वे उसके आधिकारिक कर्तव्य से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि धारा 197 सीआरपीसी द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा प्राप्त हो सके।" (जोर दिया गया)

70. **बी. साहा** (सुप्रा) में न्यायालय ने आगे कहा कि उन्हें इस प्रस्ताव से कोई विवाद नहीं है कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत मंजूरी का सवाल कार्यवाही के किसी भी चरण में उठाया और विचार किया जा सकता है। इसके अलावा, यह भी कहा गया कि अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, इस सवाल पर विचार करते समय न्यायालय के लिए शिकायत में आरोपों तक ही सीमित रहना आवश्यक नहीं है, और वह उस समय रिकॉर्ड पर मौजूद सभी सामग्रियों को ध्यान में रख सकता है जब सवाल उठाया जाता है और विचार के लिए आता है। **बी. साहा** (सुप्रा) में अपनाए गए तर्क के समान, इस न्यायालय ने **बिहार राज्य बनाम कमला प्रसाद सिंह और अन्य (1998) 5 एससीसी 690 में** भी पुष्टि की कि यह निर्धारित करते समय कि क्या लोक सेवक "अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में काम कर रहा था", न्यायालय को न केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों पर विचार करना चाहिए, बल्कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सामग्रियों पर भी विचार करना चाहिए।

71. **बख्शीश सिंह बरार बनाम गुरमेज कौर और अन्य (1987) 4 एससीसी 663 में** , याचिकाकर्ता पुलिस अधिकारी पर 14 अन्य व्यक्तियों के साथ धारा 148, 149, 302, 323 और 325 आईपीसी के तहत शिकायतकर्ता को चोट पहुंचाने और उसके बेटे की मौत का कारण बनने के आरोप लगाए गए थे। इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया था कि आपराधिक मुकदमों में परेशान होने से लोक सेवकों की सुरक्षा और लोक सेवकों के गैरकानूनी कृत्यों के खिलाफ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के बीच संतुलन बनाना होगा। यह इस बात की जांच करके किया जाना चाहिए कि एक लोक सेवक किस हद तक और किस हद तक अपने कर्तव्यों के निर्वहन या कथित निर्वहन में काम कर रहा है और क्या लोक सेवक ने अपनी सीमा पार की है। ऐसा कहने के बाद, यह देखा गया कि सभी मामलों में प्रारंभिक चरण में आपराधिक मुकदमों को भी नहीं रोका जाना चाहिए क्योंकि इससे सबूतों को बहुत नुकसान होगा। प्रासंगिक अवलोकन नीचे दिए गए हैं:

"6. इस मामले में, यह आरोप लगाया गया है कि शिकायतकर्ता को गंभीर चोटें पहुंचाई गईं और चोटों के परिणामस्वरूप कथित अभियुक्तों में से एक की मृत्यु हो गई। सवाल यह है कि जांच करते समय और पुलिस अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करते समय क्या याचिकाकर्ता के लिए इस तरह से आचरण करना आवश्यक था, जिसके परिणामस्वरूप ऐसे परिणाम सामने आए। अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लोक सेवकों की सुरक्षा करना आवश्यक है। उन्हें आपराधिक कार्यवाही और अभियोजन में परेशान किए जाने से प्रतिरक्षित किया जाना चाहिए, यही सीआरपीसी की धारा 196 और धारा 197 के पीछे तर्क है। लेकिन इस बात पर जोर देना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए और किसी भी तरह की ज्यादती की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। "मुठभेड़ में मौत" बहुत आम हो गई है। प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कार्यरत लोक अधिकारियों और लोक सेवकों की सुरक्षा और निजी नागरिकों की सुरक्षा को यह पता लगाकर संतुलित किया जाना चाहिए कि एक लोक सेवक अपने कर्तव्यों के निर्वहन या अपने कर्तव्यों के कथित निर्वहन में किस हद तक और किस हद तक काम कर रहा है, और क्या लोक सेवक ने अपनी सीमा पार की है। यह सही है कि धारा 196 में कहा गया है कि कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता है और संज्ञान लिए जाने के बाद भी यदि तथ्य सामने आते हैं कि शिकायत की गई कार्रवाई आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में की गई थी, तो मंजूरी प्राप्त किए बिना मुकदमे को रोकना पड़ सकता है। लेकिन साथ ही इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि सभी मामलों में प्रारंभिक चरण में आपराधिक मुकदमे नहीं रोके जाने चाहिए क्योंकि इससे सबूतों को बहुत नुकसान होगा। (जोर दिया गया)

72. इस न्यायालय ने **पीके प्रधान बनाम सिक्किम राज्य (2001) 6 एससीसी 704 में रिपोर्ट की** कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण प्राप्त करने के लिए, अभियुक्त के कार्य ऐसे होने चाहिए कि उन्हें आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से अलग नहीं किया जा सकता है। हालांकि, अगर कार्य और उन कर्तव्यों के प्रदर्शन के बीच कोई उचित संबंध नहीं था, और आधिकारिक स्थिति केवल अवैध कार्य के लिए अवसर या अवसर प्रदान करती है, तो किसी मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी। न्यायालय ने स्वीकार किया कि मंजूरी का प्रश्न संज्ञान के बाद किसी भी समय उठाया जा सकता है, यानी संज्ञान या आरोप तय करने के तुरंत बाद या यहां तक कि मुकदमे के समापन के समय और दोषसिद्धि के बाद भी। हालांकि, ऐसे कुछ मामले हो सकते हैं जहां बचाव पक्ष को यह साबित करने का अवसर दिए बिना मंजूरी के प्रश्न को प्रभावी ढंग से तय करना संभव नहीं हो सकता है कि उसने जो किया, वह उसने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया। ऐसे मामलों में, मंजूरी के प्रश्न को

मुख्य निर्णय में तय करने के लिए खुला छोड़ दिया जाना चाहिए जो मुकदमे के समापन पर दिया जा सकता है। प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

> "15....यह अच्छी तरह से स्थापित है कि संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी का सवाल संज्ञान के बाद किसी भी समय उठाया जा सकता है; शायद संज्ञान या आरोप तय करने के तुरंत बाद या यहां तक कि मुकदमे के समापन के समय और दोषसिद्धि के बाद भी। लेकिन कुछ ऐसे मामले हो सकते हैं जहां बचाव पक्ष को यह साबित करने का अवसर दिए बिना प्रभावी ढंग से सवाल का फैसला करना संभव नहीं हो सकता है कि उसने जो किया वह आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में था। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या अभियुक्त का दावा कि उसने जो कार्य किया वह उसके कर्तव्य के पालन के दौरान उचित था और न ही दिखावा था और न ही काल्पनिक था, बचाव पक्ष को इसे साबित करने का अवसर देकर मुकदमे के दौरान जांच की जा सकती है। ऐसी स्थिति में, मंजूरी के सवाल को मुख्य निर्णय में तय करने के लिए खुला छोड़ दिया जाना चाहिए जो मुकदमे के समापन पर दिया जा सकता है।
>
> 16. वर्तमान मामले में, अभियुक्त यह दावा कर रहा है कि सिक्किम सरकार के ग्रामीण विकास विभाग के सचिव के रूप में अपनी क्षमता में अनुबंध प्रदान करते समय, उसने एक लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग नहीं किया और ठेकेदार के पक्ष में कानून के तहत स्वीकार्य दर पर काम दिया गया, न कि कम दरों पर। इन तथ्यों को स्थापित करने की आवश्यकता है जो परीक्षण के दौरान किया जा सकता है। इसलिए, इस स्तर पर अपीलकर्ता को कोई राहत देना संभव नहीं है। हालाँकि, हम यह देख सकते हैं कि परीक्षण के दौरान, निचली अदालत इस प्रश्न की नए सिरे से जाँच करेगी और इस मामले में निर्धारित कानून के प्रकाश में मुख्य निर्णय में इस पर विचार करेगी, बिना किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए। (जोर दिया गया)

73. इस न्यायालय ने **देविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2016) 12 एससीसी 87 में टिप्पणी की** थी कि कभी-कभी मंजूरी की आवश्यकता के बारे में कुछ सवालों का फैसला साक्ष्य के बिना नहीं किया जा सकता है और लोक सेवक की सद्भावना या दुर्भावना जैसे सवालों का फैसला मुकदमे के समापन पर किया जा सकता है। की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

> "39.8. कार्यवाही के किसी भी चरण में मंजूरी का प्रश्न उठ सकता है। पुलिस या न्यायिक जांच या परीक्षण के दौरान साक्ष्य के दौरान। मंजूरी आवश्यक है या नहीं, इसका निर्धारण चरण दर चरण किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर सामग्री को रिकॉर्ड पर लाया जाना चाहिए। कार्यवाही के किसी भी चरण में मंजूरी के प्रश्न पर विचार किया जा सकता है। मामले की

प्रगति के दौरान मंजूरी की आवश्यकता स्वयं ही सामने आ सकती है और अभियुक्त के लिए यह खुला होगा कि वह परीक्षण के दौरान यह दर्शाने के लिए सामग्री प्रस्तुत करे कि उसका कर्तव्य क्या था। अभियुक्त को अपने मामले के गुण-दोष के आधार पर उसके समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार है।

39.9. कुछ मामलों में बचाव पक्ष को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना प्रश्न का प्रभावी ढंग से और अंतिम रूप से निर्णय करना संभव नहीं हो सकता है। सद्भावना या दुर्भावना का प्रश्न परीक्षण के समापन पर तय किया जा सकता है।

40. वर्तमान मामलों में अभियोजन पक्ष के अनुसार आरोप यह है कि यह फर्जी मुठभेड़ या यातना के कारण हुई मौत का मामला था, जबकि आरोपी व्यक्ति का बचाव यह है कि यह आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन का मामला था और चूंकि मृतक आतंकवादी गतिविधियों में शामिल था और कानून व्यवस्था बनाए रखने के दौरान घटना घटी है। घटना आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के दौरान हुई थी। यदि अभियोजन पक्ष का कथन सही पाया जाता है तो उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए किसी भी मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, अभियुक्त व्यक्तियों के लिए बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करना और रिकॉर्ड पर ऐसी अन्य सामग्री प्रस्तुत करना खुला होगा जो यह दर्शाता हो कि घटना उनके आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में हुई है और पहले पारित आदेश परीक्षण न्यायालय के चरण दर चरण या यहां तक कि परीक्षण के समापन के समय निर्णय के समय उपरोक्त सिद्धांतों के प्रकाश में प्रश्न को नए सिरे से तय करने के रास्ते में नहीं आएंगे। चूंकि इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि कौन सा कथन सही है। ट्रायल कोर्ट को प्रथम दृष्टया अभियोजन पक्ष के कथन के आधार पर आगे बढ़ना है और यदि अभियोजन पक्ष या अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से या किसी अन्य तरीके से न्यायालय के संज्ञान में यह आता है कि घटना का सरकारी कर्तव्य के निर्वहन से उचित संबंध था, तो न्यायालय मंजूरी के प्रश्न की पुनः जांच करेगा और कानून के अनुसार निर्णय लेगा। ट्रायल उपरोक्त आधार पर आगे बढ़ेगा।" (जोर दिया गया)

74. उपर्युक्त मामले कानूनों की चर्चा से जो कानूनी स्थिति उभर कर आती है वह यह है कि:

(i) ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जहाँ शिकायत या पुलिस रिपोर्ट में यह खुलासा नहीं हो सकता है कि अपराध का गठन करने वाला कार्य आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया था या किया जाना माना जाता था। हालाँकि, बाद में सामने आने वाले तथ्य मंजूरी की आवश्यकता को स्थापित कर सकते हैं। इसलिए, यह सवाल कि क्या मंजूरी की आवश्यकता है

या नहीं, कार्यवाही के किसी भी चरण में उठ सकता है और यह मामले की प्रगति के दौरान खुद ही सामने आ सकता है।

(ii) ऐसे कुछ मामले भी हो सकते हैं, जहां बचाव पक्ष को यह साबित करने का अवसर दिए बिना मंजूरी के सवाल पर प्रभावी ढंग से निर्णय लेना संभव नहीं हो सकता है कि सरकारी कर्मचारी ने जो किया, वह उसने अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया। इसलिए, अभियुक्त के लिए यह खुला होगा कि वह अपने कर्तव्य की प्रकृति को इंगित करने के लिए मुकदमे के दौरान आवश्यक सामग्री रिकॉर्ड पर रखे और यह दिखाए कि शिकायत किए गए कार्य उसके कर्तव्य से इस प्रकार जुड़े हुए थे, ताकि धारा 197 सीआरपीसी के तहत संरक्षण प्राप्त किया जा सके। (iii) मंजूरी के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायालय के लिए शिकायत में लगाए गए आरोपों तक ही सीमित रहना आवश्यक नहीं है। यह उस समय उपलब्ध सभी सामग्री को ध्यान में रख सकता है, जब ऐसा प्रश्न उठाया जाता है और न्यायालय के विचार के लिए आता है।

(iv) न्यायालयों को प्रारंभिक चरण में आपराधिक मुकदमों को समय से पहले रोकने या रद्द करने से बचना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से उन साक्ष्यों को बहुत नुकसान हो सकता है, जिन्हें उपयुक्त परीक्षण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ सकता है।

75. वर्तमान मामले में, हम आरोपी प्रतिवादियों के कहने पर ग्वालियर, मध्य प्रदेश के मुरार पुलिस स्टेशन में आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के लिए एफआईआर यानी केस क्राइम नंबर 967/2007 दर्ज करने के आरोप से चिंतित हैं, ताकि अपीलकर्ता के भाई की हत्या के लिए दक्षिण पुलिस स्टेशन, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में दर्ज केस क्राइम नंबर 617/2007 में अशोक दीक्षित को अपना बचाव करने में मदद मिल सके। अपीलकर्ता के भाई की 12.10.2007 को सुबह 08:30 बजे फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में गोली मारकर हत्या कर दी गई थी और आबकारी अधिनियम के तहत अपराध के लिए आरोपी अशोक दीक्षित की गिरफ्तारी उसी दिन सुबह 09:30 बजे ग्वालियर, मध्य प्रदेश में की गई थी। जाहिर है कि दोनों मामलों में आरोपी यानी अशोक दीक्षित एक ही दिन दोनों जगहों पर एक साथ मौजूद नहीं हो सकते थे, खासकर तब जब दोनों जगहों के बीच की दूरी 160 किलोमीटर है और इतनी दूरी सड़क मार्ग से एक घंटे में तय नहीं की जा सकती। यही कारण है कि अपीलकर्ता का दावा है कि ग्वालियर में दर्ज मामला झूठा है या दूसरे शब्दों में कहें तो मनगढ़ंत है।

76. यह ध्यान देने योग्य है कि ट्रायल कोर्ट ने अपने दिनांक 10.07.2015 के आदेश के माध्यम से आरोपी अशोक दीक्षित को अपीलकर्ता के भाई की हत्या के लिए 11 अन्य लोगों के साथ दोषी ठहराया था। ऐसा करते हुए, ट्रायल कोर्ट ने आरोपी

प्रतिवादियों द्वारा आबकारी अधिनियम के तहत मामला दर्ज करने के संबंध में कुछ प्रासंगिक टिप्पणियां की थीं। ट्रायल कोर्ट इस स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुंचा था कि दूसरी एफआईआर वर्तमान आरोपी प्रतिवादियों द्वारा अशोक दीक्षित के साथ मिलीभगत के परिणामस्वरूप दर्ज की गई थी। यह देखा गया है कि दक्षिण, फिरोजाबाद के आईओ ने गहन जांच के बाद पाया था कि पूरा मामला मनगढ़ंत था और इसलिए, हत्या की साजिश में शामिल होने के लिए आरोपी प्रतिवादियों के खिलाफ केस नंबर 67/2008 और 67ए/2009 को जन्म देने वाली चार्जशीट दायर की गई थी। ट्रायल कोर्ट ने यह भी देखा कि आरोपी प्रतिवादियों को एसएसपी, ग्वालियर द्वारा निलंबित कर दिया गया था और उनके खिलाफ विभागीय जांच शुरू की गई थी। उपरोक्त के अतिरिक्त, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने दिनांक 25.08.2009 के आदेश के तहत आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत प्रकरण क्रमांक 15003/2007 (राज्य बनाम अशोक दीक्षित) की कार्यवाही पर भी रोक लगा दी थी, जो सीजेएम, ग्वालियर के समक्ष लंबित है, इस कारण से कि उस मामले में निर्णय से अपीलकर्ता के भाई की हत्या के मामले पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

77. प्रतिवादी क्रमांक 3, 4 और 5 के बयान क्रमशः, जो पहले जांच अधिकारी द्वारा दक्षिण, फिरोजाबाद में उनकी जांच के दौरान 23.01.2008 को और बाद में मुरार पुलिस स्टेशन के एसएचओ, डीएस खुशावा द्वारा 12.02.2008 को धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए थे, वही सबूत के एकमात्र टुकड़े हैं जो हमारे विचार के लिए हमारे सामने पेश किए गए हैं। उन बयानों से पता चलता है कि - (ए) कथित झूठे दूसरे मामले यानी, केस क्राइम नंबर 967/2007 में गिरफ्तारी और जब्ती के दो पंचों, शैलेंद्र सिंह और त्रिलोकी गौड़ में से, त्रिलोकी गौड़ प्रतिवादी नंबर 1 का पूर्व ड्राइवर था, (बी) प्रतिवादी नंबर 1 अशोक दीक्षित की कथित गिरफ्तारी के तुरंत बाद मुरार पुलिस स्टेशन पहुंचा था और मुरार पुलिस स्टेशन के एसएचओ, डीएस खुशावा से बातचीत की थी 1 ने आरोपी प्रतिवादियों द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से भी बातचीत की थी, और (घ) प्रतिवादी संख्या 1 ने मुरार पुलिस स्टेशन के एसएचओ, डीएस खुशावा से गिरफ्तार व्यक्ति को यह कहते हुए जमानत पर रिहा करने के लिए कहा था कि वह उसका रिश्तेदार है। हालाँकि, यह स्थापित कानून है कि धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया बयान ठोस सबूत नहीं बनता है और इसका उपयोग केवल साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 145 के तहत विरोधाभासों और/या चूक को साबित करने के सीमित उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। यह **पर्वत सिंह और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2020) 4 एससीसी 33 में रिपोर्ट किए गए** निर्णयों की श्रृंखला में निर्धारित किया गया है , जिसमें निम्नलिखित रूप से देखा गया है:

> "13.1... हालांकि, कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया बयान साक्ष्य के रूप में अस्वीकार्य है और इस पर

> भरोसा नहीं किया जा सकता है या आरोपी को दोषी ठहराने के लिए इसका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार, धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए बयान का इस्तेमाल केवल विरोधाभासों और/या चूक को साबित करने के लिए किया जा सकता है। इसलिए, इस तरह, उच्च न्यायालय ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए पीडब्लू 8 के बयान पर भरोसा करके गलती की है, जबकि यह देखते हुए कि अपीलकर्ताओं के पास लाठियां थीं।" (जोर दिया गया)

78. कानून की उपरोक्त स्थिति को **बीरबल नाथ बनाम राजस्थान राज्य मामले में दोहराया गया, जिसकी रिपोर्ट 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1396 में दी गई,** जिसमें इस प्रकार कहा गया:

> "19. धारा 161 के तहत जांच के दौरान पुलिस को दिए गए बयान को "साक्ष्य" के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) की धारा 162 के तहत निर्धारित कानून की अदालत में इसकी सीमित प्रयोज्यता है।
>
> 20. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 161 के तहत जांच के दौरान पुलिस के समक्ष दिए गए बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 के तहत "पूर्व बयान" हैं और इसलिए उन्हें गवाह से जिरह करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। लेकिन यह केवल एक सीमित उद्देश्य के लिए है, ऐसे गवाह का "विरोधाभास" करना। भले ही बचाव पक्ष गवाह का खंडन करने में सफल हो जाए, लेकिन इसका हमेशा यह मतलब नहीं होगा कि उसके दो बयानों में विरोधाभास के कारण इस गवाह की पूरी तरह से बदनामी होगी। यहीं पर हमें लगता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश गलत हो गए हैं।" (जोर दिया गया)

79. इसके अलावा, 25.10.2008 को दक्षिण, फिरोजाबाद में आईओ द्वारा दर्ज किए गए दो स्वतंत्र गवाहों यानी रमेश यादव और बारेलाल के बयान, जो प्रतिवादी नंबर 1 को फंसाते हैं, को भी पूरी तरह सच नहीं माना जा सकता, खासकर तब जब उनसे क्रमशः 2008 के सत्र परीक्षण संख्या 753 और 753 ए में पूछताछ नहीं की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप आरोपी अशोक दीक्षित को दोषी ठहराया गया था। इसलिए, हम इस चरण में धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज इन बयानों के तहत बताए गए घटनाओं के संस्करण पर भरोसा करने में थोड़ा संकोच कर रहे हैं। इन बयानों की सत्यता और सत्यता का फैसला ट्रायल कोर्ट पर छोड़ना सबसे अच्छा होगा जो कथित तौर पर अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करते हैं।

80. इसके अलावा, प्रतिवादी संख्या 1 ने तर्क दिया है कि केस क्राइम संख्या 967/2007 के पंजीकरण के संबंध में उसके खिलाफ कभी कोई विभागीय जांच शुरू नहीं की गई थी। हालांकि, ट्रायल कोर्ट ने अपने दिनांक 10.07.2015 के आदेश में

यह टिप्पणी की है कि प्रतिवादी संख्या 1, 3, 4 और 5 को क्रमशः निलंबित कर दिया गया था और उनकी जांच भी की गई थी। क्या विभागीय जांच सभी आरोपी प्रतिवादियों के खिलाफ शुरू की गई थी या उनमें से कुछ के खिलाफ और जांच के सटीक निष्कर्ष भी एक ऐसा पहलू है जहां कुछ अस्पष्टता मौजूद है।

81. ऐसा कहने के बाद, दूसरी ओर, प्रतिवादी क्रमांक 3, 4 और 5 ने भी हमारे सामने कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है, जिससे प्रथम दृष्टया यह स्थापित हो सके कि यह अशोक दीक्षित था, जिसे सुबह 09:30 बजे मुरार, ग्वालियर में गिरफ्तार किया गया था; उसके द्वारा ले जाई जा रही अवैध शराब जब्त कर ली गई थी, और बाद में उसे एसएचओ, डीएस खुशावा के निर्देश पर मुचलका भरने पर मुरार पुलिस स्टेशन से रिहा कर दिया गया था। यह सच है कि आबकारी अधिनियम की धारा 34 के तहत विचारित अपराध जमानतीय है और उक्त अपराध के तहत कोई भी आरोपी पुलिस स्टेशन से जमानत पर रिहा होने का हकदार होगा। हालांकि, यह ध्यान में रखते हुए कि इस बात को लेकर गंभीर संदेह है कि क्या शुरू में कभी गिरफ्तारी हुई थी और यदि हुई थी, तो क्या वास्तव में अशोक दीक्षित को गिरफ्तार किया गया था, हम इसे सत्यापित करने के लिए विश्वसनीय और विश्वसनीय साक्ष्य की कमी के कारण इस स्तर पर उचित निर्णय पर पहुंचने में खुद को असमर्थ पाते हैं। 3, 4 और 5 ने क्रमशः कहा है कि अभियुक्त ने गिरफ़्तारी के समय खुद को अशोक दीक्षित बताया था और यह स्पष्ट नहीं है कि आबकारी अधिनियम के तहत मामला दर्ज किए जाने के दौरान उक्त अभियुक्त की पहचान का आगे विधिवत सत्यापन किया गया था या नहीं। अपीलकर्ताओं के इस आरोप के बावजूद कि उक्त अभियुक्त को पुलिस स्टेशन से ज़मानत पर रिहा करने का काम जल्दबाज़ी में किया गया था, गिरफ़्तारी के लगभग तुरंत बाद, ताकि रिहा किए गए व्यक्ति की पहचान छिपाई जा सके और यह कि किसी अनजान अजनबी को पुलिस स्टेशन से रिहा किया गया हो, कोई अन्य सामग्री जो प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 की नेकनीयती को प्रमाणित करती हो, हमारे सामने इस समय उपलब्ध नहीं कराई गई है।

82. दक्षिण, फिरोजाबाद के जांच अधिकारी का मामला है कि डीआईजी, ग्वालियर ने आरोपी प्रतिवादियों के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी नहीं दी, क्योंकि सीजेएम, ग्वालियर के समक्ष आबकारी अधिनियम के तहत अपराध के लिए पंजीकृत केस अपराध संख्या 967/2007 में केस संख्या 15003/2007 लंबित है। हालांकि, उन कार्यवाहियों पर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने 25.08.2009 के आदेश के तहत रोक लगा दी है और इसलिए, यदि आवश्यक हो तो मंजूरी के सवाल पर फिर से विचार किया जा सकता है।

83. जहां तक प्रतिवादी संख्या 1 का सवाल है, यह स्पष्ट किया जाता है कि मंजूरी की कोई आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि वह कथित झूठा मामला दर्ज होने के समय

ग्वालियर के मुरार पुलिस स्टेशन में तैनात न होने के कारण अपने आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर रहा था। परिणामस्वरूप, हत्या की कथित साजिश में प्रतिवादी संख्या 1 की संलिप्तता की सीमा का निर्धारण ट्रायल कोर्ट द्वारा अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य की आगे की जांच के बाद किया जा सकता है। हालांकि, जहां तक क्रमशः प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 का संबंध है, यदि अभियोजन पक्ष का यह मामला सही है कि उन्होंने भी झूठा मामला दर्ज करने में संदिग्ध भूमिका निभाई थी, तो आपराधिक कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए मंजूरी की आवश्यकता अनिवार्य नहीं होगी। हालांकि, बचाव पक्ष को उचित साक्ष्य पेश करके इसका खंडन करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

84. इस समय हमारे समक्ष प्रस्तुत सामग्री की प्रथम दृष्टया जांच करने पर, हम इस राय पर पहुंचे हैं कि सीजेएम, फिरोजाबाद के समक्ष लंबित आपराधिक कार्यवाही केस संख्या 67/2008 और 67ए/2009 को इस प्रारंभिक चरण में रद्द नहीं किया जाना चाहिए था। ऐसे मामलों में जहां इस बात पर वैध संदेह है कि धारा 197 सीआरपीसी के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी की आवश्यकता है या नहीं, मुकदमे की प्रगति में बाधा नहीं आनी चाहिए या अनावश्यक रूप से देरी नहीं होनी चाहिए। इसलिए, सीजेएम, फिरोजाबाद ने क्रमशः 24.11.2008 और 10.08.2009 के अपने आदेशों के माध्यम से दोनों आरोप पत्रों का संज्ञान लिया था। उच्च न्यायालय ने अपने विवादित आदेश के माध्यम से क्रमशः केस संख्या 67/2008 और 67ए/2009 में कार्यवाही को रद्द करते समय इस पहलू पर विचार करने में विफल रहने की गलती की।

85. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया जाता है कि वह ट्रायल को आगे बढ़ाए और ट्रायल के किसी भी चरण में यदि साक्ष्य से पता चलता है कि शिकायत किए गए कार्य वास्तव में प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 द्वारा आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए थे या उनके द्वारा दर्ज की गई एफआईआर फर्जी नहीं थी, तो मंजूरी के अभाव में ट्रायल को रोका जा सकता है। इसलिए, केवल प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 के लिए मंजूरी का सवाल ट्रायल कोर्ट द्वारा उचित चरण में कानून के अनुसार, इस आदेश में की गई किसी भी टिप्पणी के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से पक्षपात किए बिना उचित रूप से तय किए जाने के लिए खुला छोड़ दिया जाता है। चूंकि ये कार्यवाही 16 साल से अधिक पहले दर्ज किए गए मामले से उत्पन्न हुई है, इसलिए ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया जाता है कि वह ट्रायल को आगे बढ़ाए और इसे आज से एक वर्ष के भीतर शीघ्रता से समाप्त करे।

जी. निष्कर्ष

86. उपर्युक्त के आलोक में, अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील को स्वीकार किया जाता है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द किया जाता है।

87. हम उपर्युक्त निर्देशों के आलोक में वर्तमान अपीलों का निपटारा करते हैं।

88. लंबित आवेदन(आवेदन), यदि कोई हो, का निपटारा कर दिया जाएगा।